वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 375
ISBN-978-93-82071-55-6

देववंदना अपरनाम सामायिक

–संकलनकर्त्री–

**जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी**

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	चैत्र कृ. एकम्, 28 मार्च 2013	28/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–स्वस्तिश्री पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा जितकषायाः।
जितजन्ममरणरोगा, जितमात्सर्या जयतु जिनाः।।

श्रुतज्ञान द्वादशांग रूप है, जो कि ग्यारह अंग और चौदहपूर्व के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में द्वादशांग का अंश रूप ज्ञान ही है। भगवान महावीर स्वामी को केवलज्ञान होने के बाद जब गणधर के अभाव होने से दिव्यध्वनि नहीं खिरी तब सौधर्म इन्द्र ने युक्ति से प्रकाण्ड विद्वान् इन्द्रभूति गौतम को एक श्लोक का अर्थ बताने के लिए कहा, तब उन्होंने कहा कि मैं इसका उत्तर तुम्हारे गुरु के सामने दूँगा और जब वह इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के समवसरण में पहुँचते हैं, तब मानस्तंभ का दर्शन करते ही उनका मान गलित हो जाता है, उसका मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप हो जाता है और उनके मुख से निकल पड़ता है–

जयति भगवान हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगत कलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।

श्री गौतम स्वामी के मुख से निर्गत यह 'चैत्यभक्ति' है जो कि 'देववंदना' अपरनाम 'सामायिक' में पढ़ी जाती है। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सामायिक की जो विधि प्राचीन शास्त्रों में लिखी है, उसेनिकालकर प्रदान किया है। पूज्य माताजी ने दीक्षा लेने के पश्चात् सन् 1953 से ही अनगारधर्मामृत, मूलाचार, चारित्रसार आदि ग्रंथों के स्वाध्याय से विधिवत् सामायिक विधि के करना प्रारंभ कर दिया था। पुनः सन् 1956 में आचार्य श्री वीरसागर महाराज के संघ में सभी उनकी इस शास्त्रीय विधि को देखकर प्रभावित हुए और अनेक मुनि-आर्यिकाओं ने भी पूर्ण विधि सीखकर सामायिक करना प्रारंभ किया।

जैन साधुओं की पूर्वाण्ह, मध्यान्ह एवं सायंकाल में देववंदनाकरना ही सामायिक है। यह देववंदना कृतिकर्मपूर्वक की जाती है। कृतिकर्म क्या है ? इसमें विचार से माताजी ने लिखा है। सामायिक में उठकर, बैठकर, खड़े होकर, विधिवत् करने से, आवर्त, शिरोनति, पंचांग नमस्कार आदि करने से योगाभ्यास भी हो जाता है। श्वासोच्छ्वासपूर्वक कायोत्सर्ग करना स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभकारी है। इसमें पूज्य माताजी नेसामायिक का पद्यानुवाद कर उसको भी दिया है। क्रियाकलाप से 'सामायिक' पाठ को अर्थसहित भी दिया है। यह पुस्तक साधुओं एवं व्रती श्रावकों आदि, सभी के लिए बहुत ही उपयोगी है। इस पुस्तक से विधिवत् सामायिक करें और उसके अर्थ को हृदयंगम करते हुए सभीलोग अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के उपाय में संलग्न हो, यही मंगलभावना है।

आद्य वक्तव्य

–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित विद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।1।।

श्री कुंदकुंददेव ने मूलाचार में मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों का वर्णन करते हुए 'समता' नाम की आवश्यक क्रिया का लक्षण लिखा है–

जीविदमरणे लाभा-लाभे संजोयविप्पओगे य।
बंधुरिसुहदुक्खादिसु, समदा सामाइयं णाम।।23।।

इसकी टीका में श्री वसुनंदि आचार्य ने कहा है–

''सामाइयं णाम-सामायिकं नाम भवति। जीवितमरणलाभालाभ-संयोगविप्रयोग-बन्ध्वरिसुखदुःखादिषु यदेतत्समत्वं समानपरिणामः त्रिकाल-देववंदनाकरणं च तत्सामायिकं व्रतं भवति।''

अभिप्राय यह है कि जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, बंधु-शत्रु और सुख-दुःख आदि में जो समान परिणाम का होना है और त्रिकाल में देववंदना करना है वह सामायिक व्रत है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साधुओं के लिए त्रिकाल देववंदना करना वही 'सामायिक विधि' है।

साधुओं व श्रावकों की देववन्दना ही सामायिक है। इसी को सिद्ध करने के लिए अथवा इसी का स्पष्टीकरण करने के लिए इस ग्रंथ में आगे 'जयधवला' एवं षट्खण्डागम पुस्तक तेरहवीं के प्रमाण तथा मूलाचार, आचारसार, चारित्रसार, अनगारधर्मामृत, रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि ग्रंथों के प्रमाण दिये जा रहे हैं।

'सामायिकभाष्य' पुस्तक में गुटका आदि हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त जो सामायिक विधि है। उसकी टीका श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा की गई है वह भी मुझे प्राप्त हुई थी, उसका हिन्दी अनुवाद भी मैंने छपाया था। वह पूर्ण विधि भी प्रामाणिक है मैंने इसी पुस्तक में वह भी वृहत् सामायिक विधि दे दी है।

इस ग्रंथ में 'क्रियाकलाप' से उद्धृत देववन्दना में हिन्दी अर्थ भी दिया है जो कि समझने के लिए है। सामायिक के समय पढ़ने के लिए नहीं है। इस 'देववंदना' का हिन्दी पद्यानुवाद मैंने किया है उसको भी इसी में दिया है। उसको भी पढ़कर 'देववन्दना' कर सकते हैं।

जैन साधुओं–मुनियों के व आर्यिकाओं के अट्ठाईस कृतिकर्म में 'त्रिकाल देववन्दना' के चैत्यभक्ति व पंचगुरुभक्ति के दो-दो कृतिकर्म ऐसे छह कृतिकर्म लिए

हैं। पुनः चार बार के स्वाध्याय के तीन-तीन ऐसे बारह, रात्रिक व दैवसिक प्रतिक्रमण के 4-4 ऐसे आठ व रात्रियोग प्रतिष्ठापन, निष्ठापन के दो ऐसे 6+12+8+2=28 कृतिकर्म में सामायिक विधि के अलग से कृतिकर्म न होने से भी यह त्रिकाल देववंदना ही सामायिक है। इसमें दृढ़ विश्वास रखना चाहिए।

इन अट्ठाईस कृतिकर्म की संपूर्ण प्रयोगविधि 'मुनिचर्या' नाम की पुस्तक में है। यथास्थान उसमें देववन्दना, प्रतिक्रमण आदि के पद्यानुवाद भी हैं। जो प्राकृत व संस्कृत का अर्थ नहीं समझ पाते हैं उन साधुओं व श्रावकों के लिए विशेष उपयोगी हैं।

मैंने क्षुल्लिका अवस्था में सन् 1954 में चारित्रसार का स्वाध्याय किया था, तब उसमें लिखी विधि के आधार से इसी विधि से कृतिकर्मपूर्वक, देववन्दना–सामायिक करना प्रारंभ कर दिया था। जब सन् 1955 में प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की कुंथलगिरि में सल्लेखना देखकर पुनः पूर्व में उन्हीं आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त की थी, उसी के अनुसार मैं जयपुर में आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के संघ में आई थी। संघ में आर्यिका दीक्षा प्राप्तकर मैं सदा इसी विधि से सामायिक करती थी। मेरे से अनेक आर्यिकाओं व मुनि श्री श्रुतसागर जी, मुनि श्री सन्मतिसागर जी आदि भी इस विधि को ज्ञात कर इसी विधि से सामायिक करने लगे थे।

सन् 1958 में गिरनार तीर्थ की यात्रा से वापस आकर आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज का ससंघ चातुर्मास ब्यावर (राज.) में हुआ था। मैं सरस्वती भवन में ऊपर में रहती थी। अनेक आर्यिकाओं के साथ सामायिक करते समय यथास्थान उठकर-खड़े होकर व बैठकर इसी विधि से सामायिक करती थी। इसे देखकर पं. पन्नालाल जी सोनी ने पूछा–

माताजी! यह विधि आपने कहाँ से व किनसे सीखी है ? मैंने चारित्रसार ग्रंथ की पंक्तियाँ दिखायीं, वे बहुत ही प्रसन्न हुए व तत्क्षण ही 'क्रियाकलाप' पुस्तक लाकर मुझे दी। मैंने उस पुस्तक में यही विधि देखी, तब मेरे भी हर्ष का पार नहीं रहा। इससे पूर्व आचारसार, मूलाचार, अनगारधर्मामृत आदि ग्रंथों को अपनी शिष्याओं को पढ़ाया था व अच्छी तरह से स्वाध्याय, मनन, चिंतन करके दृढ़ श्रद्धान तो कर ही लिया था। फिर भी उस समय क्रियाकलाप देखकर व पंडित पन्नालाल जी सोनी का समर्थन प्राप्त कर सभी साधुओं को भी बहुत आनंद हुआ था।

पुनः अनेक ग्रंथों से उद्धरण निकालकर यथास्थान दे-देकर मैंने 'यतिक्रियामंजरी' नाम से पुस्तक लिखी थी। वह भी बहुत पहले छप चुकी है।

इस पुस्तक के आधार से आजकल के साधु–मुनि, आर्यिकाएं आदि तथा श्रावकगण भी इस 'देववन्दना' को ही 'सामायिक' समझकर इस विधि से सामायिक करें व स्वयं मूलाचार आदि ग्रंथों का स्वाध्याय कर अपनी क्रियाएँ करते रहें, यही मेरी मंगल भावना है।

प्रस्तावना

–आर्यिका चन्दनामती

प्रस्तुत पुस्तक 'देववंदना' अपरनाम 'सामायिक' में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जैन साधुओं की त्रिकाल में जो सामायिक होती है, उसे कैसे विधिवत् करना चाहिए इसका वर्णन षट्खण्डागम, कसायपाहुड़, मूलाचार, आचारसार, गोम्मटसार, चारित्रसार, अनगारधर्मामृत, सामायिक भाष्य आदि अनेक ग्रंथों के आधार से विस्तार से लिखा है तथा इस बात को शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध किया है कि सामायिक का ही दूसरा नाम देववंदना है। अर्थात् प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों कालों में पूर्ण विधि के साथ यथास्थान खड़े होना, बैठना, वंदना-मुक्ताशुक्ति मुद्राओं के प्रयोगपूर्वक देववन्दना करने को ही सामायिक कहा गया है।

मुनि-आर्यिका आदि के लिए तो यह सामायिक आवश्यक है ही, व्रती श्रावक-श्राविकाओं को भी इसी विधि से सामायिक करनी चाहिए तथा यदि अव्रती सम्यग्दृष्टि भी इस सामायिक को करेंगे तो उनके असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होगी।

संस्कृत और प्राकृत के अर्थ को सरलता से समझने के लिए पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सामायिक का हिन्दी पद्यानुवाद करके भी दिया है यथा–

जय हे भगवन्! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जात विरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तुगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।

श्री गौतम गणधर स्वामी के मुख से निकली चैत्यभक्ति के प्रथम संस्कृत पद्य का यह हिन्दी पद्यानुवाद है। पूरी भक्ति के अन्दर तो बहुत ही सार भरा है।

इस पुस्तक को पढ़कर आप सभी कई ग्रंथों के स्वाध्याय का भी लाभ प्राप्त करेंगे और इस बात का अनुभव करेंगे कि विधिवत् क्रिया करने से मन में विशेष आल्हाद होता है। इस कलिकाल में सरस्वती की प्रतिमूर्ति पूज्य माताजी का स्वाध्याय एवं ज्ञान कितना गहन है और जिन्होंने आगम में छिपी बातों को, निर्दोष, शुद्ध, पवित्र चर्या को, विधिवत् पालन करने के लिए समस्त जैन साधु, व्रती श्रावकों के लिए ऐसी सुन्दर, आगमोक्त पुस्तक का सृजन किया है। यह पुस्तक सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–**गोयल, **नाम–**कु. मैना

माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम–क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि–सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा–भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर

जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

आचार्य श्री शिवकोटि ने कहा है–

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो विहु मिच्छाइट्ठी मुणेयव्वो।।39।।

अर्थ–जो जीव सूत्रनिर्दिष्ट समस्त वाङ्मय का श्रद्धान करता हुआ भी यदि एक पद का श्रद्धान नहीं करता है तो वह समस्त श्रुत की रुचि करता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है।

-भगवती आराधना

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माप किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण—जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा—हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?—भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत ''वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला'' की स्थापना सन् 1972 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. **श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।**
2. **श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।**
3. **श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।**
4. **श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।**
5. **श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।**
6. **श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।**
7. **श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।**
8. **डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)**
9. **श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.**
10. **श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली**
11. **श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई**
12. **श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।**
13. **श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.**
14. **श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तरखंड)।**
15. **श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।**
16. **श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।**
17. **श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।**

परम संरक्षक

1. **श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।**
2. **डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।**
3. **श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।**
4. **श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।**
5. **श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।**

6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री जितेन्द्र कुमार सुनीता कोटड़िया, फ्लोरिडा (यू.एस.ए.)
20. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमर चंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
21. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
22. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमारजैन, मेरठ।
23. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

संरक्षक

1. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनवद (म.प्र.)।
2. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
3. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
4. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
5. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
6. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
7. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
8. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
9. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
12. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
13. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
14. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।

15. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
16. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
17. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
18. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
19. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
20. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
21. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
22. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
23. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
24. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
25. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
26. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
27. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
28. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
29. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
30. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
31. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
32. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
33. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
34. श्रीमती सुषमा जैन ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
35. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
36. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
37. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
38. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
39. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
40. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
41. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
42. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
43. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली,चौक बाजार, लखनऊ।
44. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
45. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।

46. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
47. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
48. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
49. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
50. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
51. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
52. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
53. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
54. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
55. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
56. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
57. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
58. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
59. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
60. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
61. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
62. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
63. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
64. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
65. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
66. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
67. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
68. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
69. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
70. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
71. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
72. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
73. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
74. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
75. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
76. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
77. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
78. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।

79. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
80. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
81. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
82. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
83. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
84. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
85. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
86. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
87. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
88. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
89. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
90. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
91. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
92. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
93. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
94. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
95. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
96. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
97. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
98. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
99. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
100. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
101. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
102. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
103. श्री राजेन्द्र कुमार पंचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
104. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
105. डॉ. विमला जैन ''विमल'' ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

विषय-सारणी

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	1
2.	कृतिकर्म विधि	1
3.	कृतिकर्म का लक्षण	4
4.	कृतिकर्म के भेद	4
5.	सामायिक कब और कैसे करें ?	7
6.	वन्दना योग्य मुद्रा	7
7.	अथ दृष्टाष्टक स्तोत्र	9
8.	ईर्यापथ शुद्धि (संस्कृत)	10
9.	देववन्दना (सामायिक)	13
10.	अथ चतुर्दिग्वंदना	23
11.	गुरुवंदना कब और कैसे ?	24
12.	आचार्य वंदना	25
13.	ईर्यापथ शुद्धि भक्ति (हिन्दी पद्यानुवाद)	28
14.	देववन्दना (सामायिक) (हिन्दी पद्यानुवाद)	31
15.	गुरुवंदना (हिन्दी पद्यानुवाद)	41
16.	वन्दना के 32 दोष	44
17.	कायोत्सर्ग के चार भेद	46
18.	कायोत्सर्ग के 32 दोष	47
19.	विभिन्न ग्रंथों के प्रमाण	49
20.	षट्खण्डागम के प्रमाण	49
21.	मूलाचार ग्रंथ के प्रमाण	52
22.	आचारसार ग्रंथ के प्रमाण	61
23.	गोम्मटसार-जीवकाण्ड के प्रमाण	68
24.	चारित्रसार के प्रमाण	68
25.	अनगारधर्मामृत के प्रमाण	71
26.	रत्नकरण्डश्रावकाचार के प्रमाण	91
27.	देववन्दना या सामायिक विधि (क्रियाकलाप से)	93

केवल 600 किताबों में यह पेज लगेगा।

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
	1. कृतिकर्म	93
	2. योग्यकाल	93
	3. योग्य आसन	93
	4. वन्दना योग्य-प्रदेश	94
	5. वन्दना योग्य-पीठ	94
	6. वन्दना योग्य-पद्मासनादि	94
	7. वन्दना योग्य स्थान	95
	8. वन्दना योग्य-मुद्रा	95
	9. जिन-मुद्रा	95
	10. योगमुद्रा	95
	11. वन्दना मुद्रा	95
	12. मुक्ताशुक्ति मुद्रा	96
	13. मुद्राओं का प्रयोग निर्णय	96
	14. आवर्त का स्वरूप	96
	15. शिर-लक्षण	97
	16. नति	97
28.	देववन्दना प्रयोग विधि	98
29.	देववन्दना-प्रयोगानुपूर्वी (सामायिक विधि)	99
30.	अथ देववन्दना विधि (सामायिक भाष्य ग्रंथ से)	118

आभार

इस किताब के प्रकाशन में श्री निलेश कुमार जैन सुपुत्र स्व. हृदयराम जैन (फिरोजपुर झिरखा वाले) द्वारिका, दिल्ली ने विशेष आर्थिक सहयोग प्रदान किया, एतदर्थ संस्थान की ओर से हम आपके प्रति बहुत-बहुत धन्यवाद एवं आभार ज्ञापित करते हैं।

ज्ञानदान की ये उत्कृष्ट भावनाएँ एक दिन आपकी आत्मा में अनंत ज्ञान को प्रकाशित करे, यही शुभकामना है।

-सम्पादक

देववन्दना

अपरनाम

सामायिक

मंगलाचरण

सिद्धान्नत्वार्हतः कृत्वा, देवाधिदेववन्दनाम्।
सामायिकविधिं वक्ष्ये, जिनागमप्रमाणतः।।१।।
कृतिकर्मविधिपूर्वा, नाम्ना या देववन्दना।
सामायिकक्रिया सैव, पूर्वाचार्यैः प्रकीर्तिता।।२।।
शास्त्रानुसारचर्यां ये, विदधानास्तपोधनाः।
विचरन्तीह तान् सर्वान्, भक्त्या वन्दामहे सदा।।३।।

जैन साधुओं की त्रिकालदेववन्दना ही त्रिकाल सामायिक है। यह देववन्दना कृतिकर्म विधिपूर्वक की जाती है।

कृतिकर्म क्या है ? देववन्दना की विधि क्या है ? देववन्दना का समय क्या है ? और किन-किन ग्रंथों में यह सर्व कथन है ?

इन्हीं विषयों का वर्णन इस ग्रंथ में षट्खण्डागम, कसायपाहुड़, मूलाचार, आचारसार, गोम्मटसार, चारित्रसार, अनगारधर्मामृत आदि ग्रंथों के आधार से किया जा रहा है।

कृतिकर्म विधि

श्रुतज्ञान द्वादशांगरूप है। इसे ग्यारह अंग और चौदह पूर्व नाम से भी जानते हैं। अथवा अंग और अंगबाह्य के नाम से श्रुतज्ञान के मूल में दो भेद करके अंग के १२ भेद और अंगबाह्य के १४ भेद किए हैं। कहीं पर अंगश्रुत और अनंगश्रुत ऐसी भी दो नाम कहे हैं। किन्हीं ग्रंथों में १४ अंगबाह्य श्रुत को प्रकीर्णक भी कहा है। अर्थात् १२ अंग से

अतिरिक्त श्रुतज्ञान को अंगबाह्यश्रुत, अनंगश्रुत या प्रकीर्णक ऐसे तीन नाम हैं। षट्खण्डागम, धवला पुस्तक १ में पहले अंगबाह्य के नाम कहे हैं व उनके लक्षण दिये हैं। पुनः अंगश्रुत के १२ भेद कहे हैं।[१] यथा—

अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट नाम से अर्थाधिकार—श्रुतज्ञान के दो भेद हैं। इनमें अंगबाह्य के चौदह भेद हैं—१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वंदना, ४. प्रतिक्रमण, ५. वैनयिक, ६. कृतिकर्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पाकल्प, ११. महाकल्प, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक और १४. निषिद्धिका।

अंग प्रविष्ट के १२ भेद हैं—१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, ६. नाथधर्मकथांग, ७. उपासकाध्ययनांग, ८. अंतःकृद्दशांग, ९. अनुत्तरौपपादिकदशांक, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११. विपाकसूत्रांग और १२. दृष्टिवादांग।

इनमें से बारहवें अंग दृष्टिवाद के ५ भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

चतुर्थ भेदरूप से पूर्वगत १४ भेद हैं, जो कि चौदह पूर्व कहलाते हैं। इनके नाम- १. उत्पादपूर्व २. अग्रायणीय पूर्व ३. वीर्यानुप्रवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यान, १०. विद्यानुप्रवाद, ११. कल्याणवाद, १२. प्राणावाय, १३. क्रियाविशाल और १४. लोकविंदुसार पूर्व हैं।

ऐसा ही क्रम षट्खण्डागम पुस्तक नवमीं में दिया है[२]।

वहाँ पर अंगश्रुत और अनंगश्रुत ऐसे नाम दिये हैं। पुनः अनंगश्रुत अर्थात् अंगबाह्य-श्रुत के सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव आदि चौदह भेद अनंतर अंगश्रुत के आचारांग आदि १२ भेद करके दृष्टिवाद नाम के अंग में पाँच भेदों में से चौथे भेदरूप पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि चौदह पूर्व बताये हैं।

गोम्मटसार जीवकांड में गाथा ३५६ से लेकर गाथा ३६६ तक द्वादशांग व बारहवें अंग के पाँच भेद तथा चौदह पूर्वों का वर्णन किया है। पुनः सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव आदि चौदह भेदों को अंगबाह्य नाम से गाथा ३६७-३६८ में लिया है।

"तत्त्वार्थवार्तिक' ग्रंथ में—

"श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम्"।।२०।।

सूत्र की टीका में श्री अकलंकदेव ने विस्तृत विवेचन किया है। अर्थात् श्रुतज्ञान के मूल में दो भेद हैं—अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। अंगबाह्य अनेक प्रकार का है और अंग

१. षट्खण्डागम धवला पु. १, पृ. ९७। २. षट्खण्डागम धवला टीका पु. ९, पृ. १८७।

प्रविष्ट के १२ भेद हैं। अंगप्रविष्ट का लक्षण देखिए—

अंग प्रविष्टमाचारादिद्वादशभेदं बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तागणधरानुस्मृतग्रंथ-रचनं।१२। भगवदर्हत्सर्वज्ञहिमवन्निर्गतवाग्गङ्गार्थविमलसलिलप्रक्षालितान्तःकरणैः बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैरनुस्मृतग्रन्थरचनं आचारादिद्वादशविधमङ्गप्रविष्टमित्युच्यते।[1]

बुद्धि आदि अतिशय वाले गणधरों के द्वारा रचित अंगप्रविष्ट १२ प्रकार का है। भगवान अर्हन्त सर्वज्ञदेवरूपी हिमाचल से निकली हुई वचनरूपी गंगा के अर्थरूपी निर्मल जल से जिनका अन्तःकरण प्रक्षालित है, ऐसे बुद्धि आदि ऋद्धियों के धनी गणधरों के द्वारा ग्रंथरूप से रचित आचारादि बारह अंगों को अंगप्रविष्ट कहते हैं।

पुनः अंगबाह्य का लक्षण देखिए-

आरातीयाचार्यकृताङ्गार्थप्रत्यासन्नरूपमङ्गबाह्यम्। १३। यद् गणधरशिष्य-प्रशिष्यैरारातीयैरधिगतश्रुतार्थतत्त्वैः कालदोषादल्पमेधायुर्बलानां प्राणिनामनुग्रहार्थ-मुपनिबद्धं संक्षिप्ताङ्गार्थवचनविन्यासं तदङ्गबाह्यम्।

तदनेकविधं कालिकोत्कालिकादिविकल्पात्। १४ । तदङ्गबाह्यमनेकविधम्— कालिकमुत्कालिकमित्येवमादिविकल्पात्। स्वाध्यायकाले नियतकालं कालिकम्। अनियतकालमुत्कालिकम्। तद्भेदा उत्तराध्यनादयोऽनेकविधाः।[2]

आरातीय आचार्यकृत अंग अर्थ के आधार से रचे गये ग्रंथ अंगबाह्य हैं। श्रुत अर्थ के ज्ञाता गणधरदेव के शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा कालदोष से अल्प आयु-बुद्धि वाले प्राणियों के अनुग्रह के लिए अंगों के आधार से रचे गये संक्षिप्त ग्रंथ अंगबाह्य हैं।।१३।।

कालिक, उत्कालिक आदि विकल्प से अंगबाह्य अनेक प्रकार के हैं। स्वाध्यायकाल में जिनके पठन-पाठन का नियम (नियतकाल) है, वे कालिक कहलाते हैं तथा जिनके पठन-पाठन का कोई नियत समय न हो, वे उत्कालिक हैं। उत्तराध्ययन आदि अनेक प्रकार के अंगबाह्य ग्रंथ हैं।।१४।।

यहाँ हमें यह चिंतन करना है कि जो 'आचारांग' नाम से पहला अंगश्रुत है। इसमें मुनियों के मूलगुण-उत्तरगुण व देववंदना विधि, कृतिकर्मविधि आदि का विस्तार से कथन होगा ही होगा। पुनश्च 'उपासकाध्ययन' नाम के सातवें अंग में श्रावकों की ग्यारह (११) प्रतिमाओं का दान, पूजा आदि क्रियाओं का विस्तृत विवेचन है, उनमें श्रावकों के लिए 'कृतिकर्म विधि' का वर्णन है ही है।

फिर भी अंगबाह्य में जो "कृतिकर्म" नाम से छठा भेद है, उसका लक्षण आगम में वर्णित है। वास्तविकता यह है कि दिगम्बर जैन परम्परा में अंग और पूर्वों के श्रुत-शास्त्र

१. तत्त्वार्थवार्तिक पृ. १९९। २. तत्त्वार्थवार्तिक पृ. २१०-२११।

आज नहीं है क्योंकि यह ज्ञान इतना विस्तृत है कि मौखिक ही श्रुतज्ञानी महामुनियों को प्राप्त था। इस युग में अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु महामुनि लगभग २००० (दो हजार) वर्ष पूर्व हुए हैं। उनके बाद अंग-पूर्वों के अंश-अंश आदि के ज्ञाता महामुनि हुए हैं। उन्हीं का अंश-अंश श्रुतज्ञान आज शास्त्रों में निबद्ध है।

तात्पर्य यह है कि आज जो भी कसायपाहुड़, षट्खण्डागम आदि शास्त्र हैं, वे सब द्वादशांग के और अंगबाह्य के अंश ही हैं, अतः वे सब पूर्ण प्रमाण हैं।

"कृतिकर्म" नामक अंगबाह्य श्रुत में वर्णित जो विषय है, उसका संक्षिप्त उल्लेख धवला, जयधवला आदि ग्रंथों में है।

कृतिकर्म का लक्षण

"कृत्यते छिद्यते अष्टविधं कर्म येनाक्षरकदम्बकेन परिणामेन क्रियया वा तत् कृतिकर्म पापविनाशनोपायः।"

जिन अक्षरसमूह से या जिनपरिणामों से या जिनक्रियाओं से आठ प्रकार के कर्म काटे जाते हैं—छेदे जाते हैं, उसका नाम "कृतिकर्म" है अर्थात् पापविनाश का उपाय ही कृतिकर्म है।

कृतिकर्म के भेद

मूल में कृतिकर्म के यहाँ पर दो भेद विवक्षित हैं—देववन्दना, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में भक्ति पढ़ने के प्रारंभ में प्रतिज्ञा से लेकर भक्तिपाठ से पूर्व तक जो विधि होती है, वह प्रथम भेद है। देखिए-

प्रथम भेद—

किदियम्मं अरहंत-सिद्धाइरिय-उवज्झाय-गणचिंतय-गणवसहाईणं कीरमाण-पूजाविहाणं वण्णेदि[1]। एत्थुववुज्जंती गाहा—

दुओणदं जहाजादं बारसावत्तमेव वा।
चउसीसं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजए।।६४।।

कृतिकर्म अधिकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गणचिन्तक (साधु संघ के कार्यों की चिन्ता करने वाले) और गणवृषभ (गणधर) आदिकों की, की जाने वाली पूजा के विधान का वर्णन करता है। यहाँ उपयुक्त गाथा—

यथाजात अर्थात् जातरूप के (धारक मुनि को) क्रोधादि विकारों से रहित होकर दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धियों से संयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करना चाहिए।।६४।।

१. षट्खण्डागम, धवला पु. ९, पृ. १८९।

सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतिस्तवपर्यंतःकृतिकर्मेत्युच्यते[१]।

"सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशतिस्तवपर्यन्त जो विधि है उसे कृतिकर्म कहते हैं।"

दोणदं तु जधाजादं वारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे[२]।।६०३।।

"यथाजात मुद्राधारी साधु मनवचनकाय की शुद्धि करके दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनतिपूर्वक कृतिकर्म का प्रयोग करें।" अर्थात् किसी भी क्रिया के प्रयोग में पहले प्रतिज्ञा करके भूमि स्पर्शरूप पंचांग नमस्कार किया जाता है, जैसे—

"**अथ पौर्वाण्हिकदेववन्दनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं**" ऐसी प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार किया जाता है। पुनः "**णमो अरिहंताणं**" से लेकर "**तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि**" पाठ बोला जाता है इसे सामायिक स्तव कहते हैं। इसमें "**णमो अरिहंताणं**" पाठ प्रारंभ करते समय तीन आवर्त करके एक शिरोनति की जाती है, पुनः पाठ पूरा करके तीन आवर्त एक शिरोनति की जाती है। फिर कायोत्सर्ग करके पंचांग प्रणाम किया जाता है पुनः "**थोस्सामि**" इत्यादि चतुर्विंशति स्तव के प्रारंभ में तीन आवर्त एक शिरोनति करके पाठ पूरा होने पर तीन आवर्त और एक शिरोनति होती है। इस प्रकार प्रतिज्ञा के अनन्तर प्रणाम और कायोत्सर्ग के अनन्तर प्रणाम, ऐसे दो प्रणाम हुए। सामायिक दण्डक के आदि-अन्त में और थोस्सामि स्तव के आदि-अन्त में ऐसे तीन-तीन आवर्त चार बार करने से बारह आवर्त हुए तथा प्रत्येक में एक-एक शिरोनति करने से चार शिरोनति हो गईं।

द्वितीय भेद—

इसमें 'देववन्दना' अपरनाम 'सामायिक' में जो कृतिकर्म होता है, वह छह प्रकार का है[३]—

देववन्दना में छह प्रकार का कृतिकर्म—

जिण-सिद्धाइरिय-बहुसुदेसु वंदिज्जमाणेसु जं कीरइ कम्मं तं किदियम्मं णाम। तस्स आदाहीण-तिक्खुत्त-पदाहिण-तिओणद-चदुसिर-वारसावत्ता-दिलक्खणं विहाणं फलं च किदियम्मं वण्णेदि ?[३]

जिनदेव, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय की वन्दना करते समय जो क्रिया की जाती है, उसे कृतिकर्म कहते हैं। उस कृतिकर्म के आत्माधीन होकर किए गए तीन बार

१. मूलाचार गाथा ६०२ की टीका। २. मूलाचार गा. ६०३। ३. जयधवला कसायपाहुड़, पृ. ११८।

प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार नमस्कार और बारह आवर्त आदि रूप लक्षण, भेद तथा फलका वर्णन कृतिकर्म प्रकीर्णक करता है।

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम्[१]।।२।।

तथा-"आदाहीणं, पदाहीणं, तिक्खुत्तं, तिऊणदं, चदुस्सिरं, वारसावत्तं, चेदि।"

(१) वन्दना करने वाले की स्वाधीनता (२) तीन प्रदक्षिणा (३) तीन भक्ति संबंधी तीन कायोत्सर्ग (४) तीन निषद्या-१. ईर्यापथ कायोत्सर्ग के अनन्तर बैठकर आलोचना करना और चैत्यभक्ति संबंधी क्रिया-विज्ञापन करना २. चैत्यभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना और पंचमहागुरुभक्ति संबंधी क्रिया विज्ञापन करना ३. पंचगुरुभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना (५) चार शिरोनति (६) बारह आवर्त। यही सब आगे सामायिक विधि में आता है।

कसायपाहुड़ पु. १ में वर्णित कृतिकर्म सामायिक विधि को बतलाता है। यही वर्णन षट्खण्डागम (धवला टीका सहित) पुस्तक १३ में वर्णित है।

आगे इन्हीं ग्रंथों के ये सभी प्रमाण दिये जा रहे हैं, उन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए।

१. अनगारधर्मामृत अ. ९।

सामायिक कब और कैसे करें?

साधुओं की सामायिक और देववंदना एक है। विधिवत् देववंदना करना इसी का नाम सामायिक है। '**सत्त्वेषु मैत्रीं**' आदि पाठ पढ़कर जाप्य आदि करके सामायिक करना और देवदर्शन के समय देववंदना क्रिया करना ऐसा नहीं है प्रत्युत त्रिकाल सामायिक के समय ही तीन बार देववंदना का विधान है। उसी को यहाँ सप्रमाण दिखाया जाता है।

मूलाचार में श्रीकुन्दकुन्ददेव ने अट्ठाईस मूलगुणों का वर्णन करते हुए समता नाम के आवश्यक का लक्षण किया है-

''जीविदमरणे लाभा-लाभे संजोयविप्पओगे य।
बंधुरिसुहदुक्खादिसु, समदा सामाइयं णाम।।२३।।''

इसकी टीका में श्री वसुनंदि आचार्य ने कहा है-

''सामाइयं णाम-सामायिकं नाम भवति। जीवितमरणलाभालाभ-संयोगविप्रयोगबन्ध्वरिसुखदुःखादिषु यदेतत्समत्वं समानपरिणामः त्रिकाल-देववंदनाकरणं च तत्सामायिकं व्रतं भवति[१]।''

अभिप्राय यह है कि जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, बंधु-शत्रु और सुख-दुःख आदि में जो समान परिणाम का होना है **''और त्रिकाल में देववंदना करना है वह सामायिक व्रत है।''**

अन्यत्र सामायिक के नियतकालिक-अनियतकालिक ऐसे दो भेद करके नियतकालिक में त्रिकालदेववंदना और अनियतकालिक में समताभाव को रखना ऐसा कहा है।

आचारसार ग्रंथ में सामायिक आवश्यक का वर्णन करते हुए सिद्धान्तचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्यदेव तीर्थक्षेत्र या जिनमंदिर में जाकर विधिवत् ईर्यापथशुद्धि और चैत्य-पंचगुरुभक्ति करने का आदेश दे रहे हैं। इसके प्रमाण आगे दिये जा रहे हैं।

त्रिसंध्यं वंदने युंज्यात्, चैत्यपंचगुरुस्तुती।
प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वंते दोषविशुद्धये।।१३।।

तीनों सन्ध्या संबंधी जिनवन्दना में चैत्यभक्ति और पंचगुरु भक्ति पढ़ें तथा वृहद्भक्तियों के अन्त में पाठ की हीनाधिकतारूप दोषों की विशुद्धि के लिए प्रियभक्ति (समाधिभक्ति) करना चाहिए[२]।

वन्दना योग्य मुद्रा

मुद्रा के चार भेद हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों

१. मूलाचार पृ. २९ (ज्ञानपीठ से मुद्रित)। २. अनगार धर्मामृत अ. ९।

मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिनमुद्रा—दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है। **योगमुद्रा**—पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्रदेव योगमुद्रा कहते हैं। **वन्दना मुद्रा**—दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के वन्दना मुद्रा होती है। **मुक्ताशुक्तिमुद्रा**—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को आचार्य मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं।

देववन्दना के लिए जिनमंदिर में पहुँचकर हाथ-पैर धोकर 'निःसहि" का तीन बार उच्चारण कर जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करें। अनंतर **''दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि''** इत्यादि स्तोत्र को पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवें। पुनः **'निःसंगोऽहं जिनानां''** इत्यादि दर्शनस्तोत्र पढ़कर यदि खड़े होकर सामायिक करना है तो खड़े होकर **''ईर्यापथशुद्धि पाठ''** से सामायिक शुरू करें। यदि खड़े होकर सामायिक करने की शक्ति नहीं है तो बैठकर करें।

बैठकर भी देववन्दना करने का विधान —

''साधुः पुनर्वंदनां यथोक्तविशेषणविशिष्टः-सपर्यंकः सप्रतिलेखन-मुकुलितवत्सोत्संगितकरः कुर्यात् । कया? अशक्त्या। उद्भो यदि वंदितुं न शक्नुयादित्यर्थः[१]।''

साधु यदि खड़े होकर वंदना नहीं कर सकते हैं-असमर्थ हैं तो पर्यंकासन से बैठकर, पिच्छी लेकर, मुकुलित हाथ जोड़कर वक्षःस्थल के पास रखकर देववंदना करें। (अपनी वसतिका में सामायिक करने में "दृष्टं जिनेन्द्र भवनं.....तथा निःसंगोऽहं जिनानां.....आदि पढ़ें तो अच्छा ही है, नहीं भी पढ़ें मात्र निःसंगोऽहंजिनानां ऐसा एक श्लोक पढ़कर "पडिक्कमामि भंते।" से भी शुरू कर सकते हैं।)

चैत्यभक्ति में तीन प्रदक्षिणा —

चैत्यभक्ति पढ़ते-पढ़ते भी जिनप्रतिमा की तीन प्रदक्षिणा देने का विधान है।

दीयते चैत्यनिर्वाण-योगिनंदीश्वरेषु हि।[२]
वंद्यमानेष्वधीयानैस्तत्तद्भक्तिं प्रदक्षिणा।।९२।।

चैत्यभक्ति, निर्वाणभक्ति, योगिभक्ति और नन्दीश्वर भक्ति पढ़ते-पढ़ते मंदिर में, निर्वाणक्षेत्रों में, योगियों की व जिनबिम्बों की प्रदक्षिणा करना चाहिए।

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ४३ की टीका। २. अनगारधर्मामृत अ. ८।

अथ दृष्टाष्टक स्तोत्र

सामायिक के लिए श्री जिनमंदिर को जावे। मंदिर का शिखर दिखते ही इस दृष्टाष्टक स्तोत्र को पढ़ते हुए मंदिर के पास पहुँचे अथवा मंदिर के पास पहुँचकर मंदिर की प्रदक्षिणा देते हुए दृष्टाष्टक स्तोत्र पढ़ें।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि, भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतु।
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्वलकूटकोटि-नद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम्।।१।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-धामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम् ।।
विद्याधरामरबधूजनपुष्पदिव्य-पुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ।।२।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-विख्यातनाकगणिकागणगीयमानम् ।।
नानामणिप्रचयभासुररश्मिजाल-व्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालम् ।।३।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्ष-गन्धर्वकिन्नरकरार्पितवेणुवीणा।।
संगीतमिश्रितनमस्कृतधीरनादै-रापूरिताम्बरतलोरुदिगन्तरालं।।४।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-मालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम्।
माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां-लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यं।।५।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेम-सारोज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः।
सन्मंगलैः सततमष्टशतप्रभेदै- र्विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ।।६।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु-कर्पूरचन्दनतरुष्कसुगन्धिधूपैः।
मेघायमानगगने पवनाभिघात-चंचच्चलद्विमलकेतनतुंगशालम् ।।७।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्र-च्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृन्दः।
दोधूयमानसितचामरपंक्तिभासं, भामण्डलद्युतियुतप्रतिमाभिरामं।।८।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार-पुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिम् ।
नित्यं वसंततिलकश्रियमादधानं, सन्मंगलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवंद्यं।।९।।
दृष्टं मयाद्य मणिकांचनचित्रतुंग-सिंहासनादिजिनविम्बविभूतियुक्तं।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे, सन्मंगलं ''सकलचन्द्र'' मुनीन्द्रवंद्यं।।१०।।

पुनः उचित स्थान पर पैर धोकर चैत्यालय के अन्दर प्रवेश करें। ''निःसही निःसही निःसही'' ऐसा उच्चारण करके श्री जिनेन्द्रदेव के मुख को देखकर नमस्कार करके ''निःसंगोऽहं जिनानां'' इत्यादिरूप से प्रसिद्ध 'ईर्यापथशुद्धि' नामक स्तोत्र को पढ़ें। यदि जिनमंदिर की बाहर से प्रदक्षिणा नहीं है तो इसी 'निःसंगोऽहं' स्तोत्र को पढ़ते हुए वेदी में विराजमान जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा देवें।

H * * * H

ईर्यापथशुद्धि

निःसंगोहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या।
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्।।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यं।
निंदादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेंद्रम् ।।१।।
श्रीमत्पवित्रमकलंकमनंतकल्पं, स्वायंभुवं सकलमंगलमादितीर्थम्।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां, त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये।।२।।
श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलांक्षनं।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ।।३।।
श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् ।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः।।४।।
अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य, देव! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे, संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ।।५।।
अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।६।।
नमो नमःसत्त्वहितंकराय, वीराय भव्याम्बुजभास्कराय।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।७।।
नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय, विनष्टदोषाय गुणार्णवाय।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।८।।

देवाधिदेव! परमेश्वर! वीतराग!
सर्वज्ञ! तीर्थकर! सिद्ध! महानुभाव!!
त्रैलोक्यनाथ! जिनपुंगव! वर्द्धमान।
स्वामिन्! गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते।।९।।

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा जितकषायाः।
जितजन्ममरणरोगा, जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः।।१०।।

जयतु जिनवर्धमानस्त्रिभुवनहितधर्मचक्रनीरजबन्धुः।
त्रिदशपतिमुकुटभासुरचूड़ामणिरश्मिरंजितारुणचरणः।।११।।

जय जय जय त्रैलोक्यकाण्डशोभिशिखामणे।
नुद नुद नुद स्वान्तध्वान्तं जगत्कमलार्क! नः।।
नय नय नय स्वामिन्! शांतिं नितान्तमनन्तिमां।
नहि नहि नहि त्राता लोकैकमित्र! भवत्परः।।१२।।

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे।
भक्तिं स्तुतिं विनतिमंजलिमंजसैव।।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति।
यश्चर्करीति तव देव! स एव धन्यः।।१३।।

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यम् ।
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते।
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः।।१४।।

रूपं ते निरुपाधिसुन्दरमिदं पश्यन्सहस्त्रेक्षणः।
प्रेक्षाकौतुककारिकोऽत्र भगवन्नोपैत्यवस्थान्तरम् ।।

वाणीं गदगद्यन्वपुः पुलकयन्नेत्रद्वयं स्त्रावयन् ।
मूर्द्धानं नमयन्करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन् ।।१५।।

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति।
श्रेयः सूतिरिति श्रियां निधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति।।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्त्यजोपेक्षणं।
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन! किं विज्ञापितैर्गोपितैः।।१६।।

त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटि-प्रभाभिरालीढपदारविन्दम्।
निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षम् जिनेंद्रचंद्रं प्रणमामि भक्त्या।।१७।।

करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी।
ईर्यापथमिति भीत्या मुंचे तद्दोषहान्यर्थम् ।।१८।।

देववंदना प्रयोगविधि—

देववंदना

(सामायिक)

पुनः जिनेंद्रदेव के सामने पूर्व या उत्तर मुखकर खड़े होकर या बैठकर "पडिक्कमामि भंते!" यह ईर्यापथशुद्धि का प्रतिक्रमण बोलते हुए सामायिक विधि प्रारंभ करें।

ईर्यापथशुद्धि

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडिय पइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं, तस्स विसोहिकरणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं पज्जुवासं करेमि, तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

९ जाप्य

(इस प्रतिक्रमण को पढ़कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि गाथा का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार जाप्य देवे अनन्तर पर्यंकासन से या गवासन से बैठकर आलोचना पढ़ें।)

-आलोचना-

ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादादेकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा। निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा। मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरु भक्तिभो।।१।।

इच्छामि भन्ते! आलोचेउं इरिया-वहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिम-चउदिस-विदिसासु विहरमाणेणजुगंत्तरदिट्ठिणा भव्वेण

दट्ठव्वा। पमाददोसेण डबडबचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अनन्तर उठकर भगवान को पंचांग नमस्कार करें पुनः भगवान के समक्ष बैठकर कृत्य विज्ञापन करें-

नमोस्तु भगवन् ! देववंदनां करिष्यामि।

अनन्तर पर्यंकासन से बैठकर नीचे लिखा मुख्य मंगल पढ़ें।

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ।।१।।
सुरेन्द्र मुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् ।
प्रणमामि महावीरं, लोकत्रितयमंगलम्।।२।।

अनन्तर बैठे-बैठे नीचे लिखा पाठ पढ़कर सामायिक स्वीकार करें।

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झं ण केणवि।।३।।
रायबंधं पदोसं च, हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदिमरदिं च वोस्सरे।।४।।
हा दुट्ठकयं हा दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि, पच्छुत्तावेण वेदंतो।।५।।
दव्वे खेत्ते काले, भावे य कदावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो, मण-वच-कायेण पडिकमणं।।६।।
समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं।।७।।

अथ कृत्यविज्ञापना

भगवन्नमोस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादाः वंदिष्येऽहं। एषोऽहं सर्वसावद्य-योगाद्विरतोऽस्मि।

अनन्तर क्रियाविज्ञापना

अथ पौर्वाण्हिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्तिमुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त कर एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से या बैठकर योगमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर "थोस्सामिस्तव" पढ़ें।)

थोस्सामिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।

एवं मए अभित्थुया, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पहासत्ता[१]।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदनामुद्रा से हाथ जोड़कर चैत्यभक्ति पढ़ें।)

---

१. पयासंता-प्रकाशयन्तः इति वा पाठान्तरं टीकायां (क्रियाकलापः पृ. १४९)।

चैत्यभक्ति

हरिणीछंद —

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी - भावाद्विवित्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ।।२।।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ।।३।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्य।।५।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ।।११।।

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान् ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।
इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।
अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ।।२३।।
लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामल-विशालकूलद्वितयम्।।२४।।
शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम् ।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य - द्भुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ।।२७।।
ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रो-द्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्त्रवसंवरणनिर्जरानिःस्त्रवणं।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ।।२९।।
अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

पृथ्वी छंद —

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ।।३२।।
मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।
हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।
तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

अनन्तर चैत्य के सम्मुख बैठकर नीचे लिखी आलोचना पाठ पढ़ें—

*आलोचना या अंचलिका —***इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं**

अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार करें। पश्चात् भगवान् के सन्मुख बैठकर नीचे लिखी कृत्यविज्ञापना करें।)

अथ पौर्वाह्णिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पुनः खड़े होकर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति कर पूर्वोक्त सामायिक दंडक पढ़ें। अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। अनन्तर भगवान के सन्मुख पूर्वोक्त रीति से खड़े-खड़े ही वंदनामुद्रा से नीचे लिखी पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

पंचमहागुरुभक्ति

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।।१।।

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्दयं[1] जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं।।२।।

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, वारसंगाइं सुअजलहि-अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खंगयासंगया।।३।।

घोरसंसार-भीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।४।।

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणंगया[2], धम्मवरझाणसुक्केझाणं गया।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहवो ते महं[3] मोक्खपहमग्गया।।५।।

१. 'अतिस्तब्धमतिकठोरं' इति टीकायां क्रियाकलापग्रंथे। २. 'खीणंगया' ऐसा भी पाठ है। ३. 'महामोक्ख' ऐसा भी पाठ है।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं।।६।।

अरुहा सिद्धाइरिया,उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण[1] णमुक्कारा[2], भवे भवे मम सुहं दिंतु।।७।।

आलोचना या अंचलिका

(पुनः गवासन से बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें।)

इच्छामि भन्ते! पंचमहागुरुभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपाल-णरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(पश्चात् पूर्वोक्त देववंदना के पाठ में न्यूनता हुई हो अथवा अधिकता हुई हो तो इसकी विशुद्धि के लिए समाधिभक्ति पढ़ने का आगम में नियम है। तद्यथा-गवासन से बैठकर क्रिया विज्ञापन करें।)

अथ पौर्वाण्हिक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीचैत्यपंचमहागुरुभक्ती विधाय तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनतिपूर्वक णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़ें। दंडक के अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति करके सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें पुनः भूमिस्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक थोस्सामि इत्यादि स्तव पढ़ें, अंत में पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से नीचे लिखी समाधिभक्ति पढ़ें। तद्यथा-

१. 'एदे पंच' ऐसा भी पाठ है। २. 'णमोक्कारा' और 'णमोयारा' भी पाठ है।

समाधिभक्ति

अथेष्ट प्रार्थना– **प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।**
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगतिः, सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः।।१।।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः।।२।।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमहु णाणदेवय! मज्झ वि दुक्खक्खयं दिन्तु।।३।।

(अनन्तर गवासन से बैठकर नीचे लिखी आलोचना पढ़ें।)

इच्छामि भंते! समाहिभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान करें।)

सामायिक का उत्कृष्ट काल ६ घड़ी (२ घंटे २४ मिनट) है। मध्यम काल ४ घड़ी (१ घंटे ३६ मिनट) है और जघन्य काल २ घड़ी (४८मिनट) है।

इस देववंदना में ईर्यापथशुद्धि, चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति को पढ़ने के बाद उपर्युक्त जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट सामायिक के काल में जितना समय शेष रहा हो उतने समय में पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ या रूपातीत ध्यान करें अथवा सिद्धचक्र मंत्र, णमोकार मंत्र आदि का मानसिक या उपांशु जाप्य करें। सामायिक पूर्ण करते समय गुर्वावली भी पढ़ना चाहिए।

अथ चतुर्दिग्वंदना

प्राग्दिग्विदिगन्तरे, केवलिजिन-सिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वन्दे।।१।।

दक्षिणदिग्विदिगन्तरे, केवलिजिन-सिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वन्दे।।२।।

पश्चिम दिग्विदिगन्तरे, केवलि-जिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।३।।

उत्तरदिग्विदिगन्तरे, केवलिजिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वन्दे।।४।।

गुर्वावली —(**ॐ आद्यानामाद्ये जंबूद्वीपे मेरोर्दक्षिणभागे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे भारतदेशे... प्रदेशे.....नगरे वीर निर्वाण संवत् एकोनचत्वारिंशदुत्तर-पंचविंशतिशततमे[१] (२५३५ तमे) मासोत्तममासे....मासे.....पक्षे..... तिथौ.....वासरे प्रातःकाले सामायिकं कृत्वा श्रीमत्कुंदकुंदाम्नाये सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदसूर्यादिसर्व-पूर्वाचार्येभ्यो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु। गुरूणांगुरु-चारित्र-चक्रवर्ती-श्रीशांतिसागराचार्येभ्यो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु दीक्षागुरु[२]-श्रीवीरसागराचार्येभ्यो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।[३]**)

पुनः यदि गुरु प्रत्यक्ष में हैं तो उनके पास जाकर विधिवत् गुरुवंदना करें और यदि प्रत्यक्ष में नहीं हैं तो परोक्ष में ही लघु तीन भक्तियाँ पढ़कर विधिवत् गुरुवंदना करें।

गुरुवंदना कब और कैसे?

वंद्या दिनादौ गुर्वाद्या विधिवत् विहितक्रियैः,
मध्यान्हे स्तुतिदेवैश्च सायं कृतप्रतिक्रमैः।।५४।। (अनगार ध.अ. ८)

प्रातः सामायिक के बाद विधिवत् कृतिकर्म करके आचार्य आदि की वंदना करें। मध्यान्ह में भी सामायिक के बाद कृतिकर्मपूर्वक गुरुओं की वंदना करें और सायंकाल में दैवसिक प्रतिक्रमण के बाद विधिवत् गुरुवंदना करें।

लघ्व्या सिद्धगणिस्तुत्या गणी वंद्यो गवासनात् ।
सैद्धान्तोंऽतःश्रुतस्तुत्या तथान्यस्तन्नुतिं विना।।३१।। अनगारधर्मा. अ. ९

जब आचार्यदेव बिना किसी व्यासंग के सुखपूर्वक अपने आसन पर स्थित हों तब मुनि और आर्यिकायें गवासन से बैठकर गुरु से अनुज्ञा लेकर लघु सिद्ध और लघु आचार्य भक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें यदि आचार्य सिद्धांतवित् हैं तो मध्य में

---

१. जो वीरनिर्वाणसंवत् हो उसे बोले। २. अपने दीक्षागुरु का नाम लेना। ३.गुर्वावली गुरुपरंपरा से पढ़ने की पद्धति है।

लघु श्रुतभक्ति भी करें अर्थात् लघु सिद्ध, श्रुत और आचार्यभक्तिपूर्वक वंदना करें। अन्य मुनियों की मात्र लघु सिद्धभक्ति पढ़कर वंदना करें और उपाध्याय मुनि की लघु सिद्ध व श्रुतभक्ति पढ़कर वंदना करें।

आर्यिकायें भी आचार्य के सदृश ही गणिनी आर्यिका की कृतिकर्मपूर्वक वंदना करती हैं।

यह त्रिकाल वंदना की विधि है। इससे अतिरिक्त सम्पूर्ण क्रियाओं के—स्वाध्याय, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि के प्रारंभ में बाहर आने-जाने आदि में गवासन से बैठकर मात्र नमोऽस्तु शब्द बोलकर वंदना करनी चाहिए[१]''तथा विशेष कार्यों में कृतिकर्म-विधिपूर्वक वंदना करनी चाहिए।

मूलाचार में कहा है कि-

आइरिय उवज्झायाणं पव्वत्तयत्थेर-गणधरादीणं।
एदेसिं किदियम्मं कादव्वं णिज्जरट्ठाए।।५९३।।

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर इन पांचों प्रकार के गुरुओं की कर्मों की निर्जरा के लिए कृतिकर्म पूर्वक वंदना करना चाहिए। आगे भी कहा है कि जब ये गुरु अपने आसन पर स्थित हों, शांतचित्त हों एवं सन्मुख मुख किये हों उस समय उनकी अनुज्ञा लेकर बुद्धिमान मुनि कृतिकर्म का प्रयोग करें। अर्थात् 'हे भगवन्! या हे आचार्य देव! मैं वंदना करूंगा' ऐसी विज्ञापना द्वारा गुरु को सूचित करके वंदना विधि प्रारंभ करें।''[२]

इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि गुरुवंदना में भी कृतिकर्म विधि का प्रयोग करना चाहिए। कृतिकर्म का लक्षण पहले बता चुके हैं।

आचार्य वंदना

गुरु की तीन प्रदक्षिणा देकर कम से कम एक हाथ दूर से गवासन से बैठकर प्रतिज्ञा करें।

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से वृहत् या लघु सामायिक दण्डक पढ़ें। तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छवास में ९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करें पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके वृहत् या लघु थोस्सामि स्तव पढ़ें। पुनरपि तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

१. अनगारधर्मामृत, अध्याय ८, श्लोक ५५। २. मूलाचार अ. ६, गाथा ६००।

लघु सिद्धभक्ति —

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलघुमव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।

तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो, कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणा-गदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोस्तु आचार्यवंदनायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि से सामायिक दण्डक, ९ जाप्य और थोस्सामिस्तव करके वंदना मुद्रा से लघुश्रुतभक्ति पढ़ें।)

लघु श्रुतभक्ति —

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।
अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण - महोवहिं सिरसा।।२।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

अंचलिका—**इच्छामि भन्ते! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थयथुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ,**

बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

नमोस्तु आचार्यवंदनायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्तविधि से सामायिक दंडक, ९ जाप्य और थोस्सामिस्तव पढ़कर वंदना मुद्रा से लघु आचार्यभक्ति पढ़ें।)

लघु आचार्यभक्ति —

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।
छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिए सदा वन्दे।।२।।
गुरुभक्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।४।।
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णव गम्भीराः, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

*अंचलिका —***इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहि-मरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

विशेष — यह उत्कृष्ट गुरुवंदना विधि है। कदाचित् गवासन से बैठे-बैठे भी यह सारी विधि की जा सकती है अथवा कृतिकर्मविधि-सामायिक दण्डक और थोस्सामिस्तव के बिना भी मात्र "नमोस्तु आचार्यवंदनायां....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं" ऐसा बोलकर ९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करके तीनों भक्तियाँ पढ़कर भी गुरुवंदना की जाती है।

(जो साधु या श्रावक हिन्दी में सामायिक करना चाहते हैं। देववन्दना अपरनाम सामायिक का ही यह पद्यानुवाद है। इसे पढ़कर जिनमंदिर में प्रवेश कर 'निःसही' का उच्चारण कर दर्शनस्तोत्र पढ़कर सामायिक करें अथवा अपनी वसतिका में इसका एक श्लोक पढ़कर भी आगे की विधि से सामायिक करें।)

ईर्यापथशुद्धि भक्ति

(हिन्दी पद्यानुवाद)

हे भगवन् ! मैं निःसंग हो, जिनगृह की प्रदक्षिणा करके।
भक्ती से प्रभु सन्मुख आकर, करकुड्मल शिर नत करके।।
निंदारहित दुरितहर अक्षय, इंद्रवंद्य श्री आप्त जिनेश।
सदा करूँ संस्तवन मोहतमहर! तव ज्ञानभानु परमेश।।१।।

जिनमंदिर श्रीयुत पावन, अकलंक अनंतकल्प सच में।
स्वयं हुए अकृत्रिम सब, मंगलयुत प्रथम तीर्थ जग में।।
नित्य महोत्सव सहित मणीमय, जिनवर चैत्यालय उत्तम।
तीन लोक के भूषण उनकी, शरण लिया मैं हे भगवन्।।२।।

स्याद्वादमय अमोघ शासन, श्रीमत् सदा परम गंभीर।
त्रिभुवनपति शासन जिनशासन, सदा रहे जयशील सुधीर।।३।।

श्रीमुख के अवलोकन से, श्रीमुख का अवलोकन होता।
अवलोकन से रहित जनों को, वह सुख प्राप्त कहाँ होता।।४।।

हे भगवन् ! मम नेत्र युगल शुचि, सफल हुए हैं आज अहो।
तव चरणांबुज का दर्शन कर, जन्म सफल है आज अहो।।
हे त्रैलोक्य तिलक जिन! तव, दर्शन से प्रतिभासित होता।
यह संसार वार्धि चुल्लुक, जलसम हो गया अहो ऐसा।।५।।

आज पवित्र हुआ तनु मेरा, नेत्र युगल भी विमल हुए।
धर्मतीर्थ में मैं स्नान, किया जिनवर! तव दर्श किए।।६।।

नमो नमो हे सत्त्वहितंकर! भव्यकमलभास्कर हे ईश।
अनंत लोकपति सुर अर्चित जिन, नमूँ सुराधिप देव हमेश।।७।।

नमूँ सुरों से अर्चित जिनवर, दोषरहित गुणसिंधु तुम्हें।
हे देवाधिदेव जिन शिवपथ, प्रतिबोधक मैं नमूँ तुम्हें।।८।।

हे देवाधिदेव! परमेश्वर!, वीतराग! सर्वज्ञ जिनेश।
तीर्थंकर जिन! सिद्ध! महानुभाव! त्रिजग के नाथ महेश।।
हे जिनपुंगव! वर्धमान स्वामिन् ! तव चरणाम्बुज युग की।
शरण लिया मैं भक्ति भाव से रक्षा करो प्रभो! झटिती।।९।।

मद अरु हर्ष द्वेष के विजयी, मोह परीषह के विजयी।
महा कषाय भटों के विजयी, भव कारण के अतःजयी।।
जन्म-मरण रोगों को जीता, मात्सर्यादिक दोषजयी।
सबको जीत कहाए तुम 'जिन', अतः रहो जयशील सही।।१०।।

त्रिभुवन हितकर धर्मचक्र, नीरज बंधो! हे सूर्य जिनेश।
हे जिन वर्धमान! तव जय हो, धर्मकीर्तिवर्धित भुवनेश।।
सुरपतिमुकुट प्रभामय भास्कर, चूड़ामणि की किरणों से।
रंजित अरुणचरणयुग जिनके, ऐसे प्रभु जयशील रहें।।११।।

जय जय जय त्रैलोक्यकाण्ड के, शोभित चूड़ामणि जिनवर।
मन के तम को हरो हरो, मम हरो जगत पंकज भास्कर।।
स्वामिन् ! शक्ति अनन्ती मुझको, करो करो झट करो सदा।
नहिं नहिं नहिं लोकैकमित्र प्रभु, तुम सम अन्य कोई सुखदा।।१२।।

मन में भक्ति धरें मुख से, संस्तुती करें अति भक्ति भरें।
शिर से नमन करें करद्वय, कुड्मल पंकज अंजुली करें।।
इस विधि देव! तुम्हारी जो, भक्ति स्तुति नतिअंजुली करें।
धन्य वही हैं जीव जगत में, धन्य जन्म निज सफल करें।।१३।।

जन्म विनाशी चरण कमल तव, यदि नहिं मिले किसी जन को।
तो भी वह दुर्देव न सेवे, चाहे स्वैर रहे भी वो।।
सुलभ प्राप्त अन्नादि भखे, यदि अन्न कभी दुर्लभ होवे।
क्षुधा नाश के हेतु बुभुक्षू, कालकूट विष क्या पीवे?।।१४।।

सुन्दररूप उपाधि रहित तव, देख इंद्र भी अति हर्षित।
नेत्र हजार किये दर्शक, कौतुक कर भगवन् ! भक्तीवश।।
गद्गद वाणी पुलकित तनु, नेत्रों से आनंदाश्रु झरें।
मस्तक झुका हाथ युग जोड़ें, मन भी तुष्टी हर्ष धरे।।१५।।

त्रसित शत्रुगण त्रिभुवनवेदी, तीन लोक त्राता तुम ही।
श्रेय जन्मदाता श्री की निधि, सुरगण में हो श्रेष्ठ तुम्हीं।।
शरण कुशल! तव शरणे आया, छोड़ उपेक्षा रक्ष करो।
हे जिन! गुप्त प्रगट क्या करना? क्षेमस्थान प्रदान करो।।१६।।

तीनलोक राजेन्द्र मुकुट, तटमणि की आभा से चुंबित।
जिनके चरण सरोरुह उत्तम, कांतिमान् चमके संतत।।
जिनने है जड़मूल उखाड़ा, कर्मवृक्ष ऐसे प्रभु जो।
जिनवर चन्द्र तुम्हें मैं प्रणमूं, भक्ति भाव से शिरनत हो।।१७।।

हाथ-पैर तनु से विघात से, चलते जीवों का जो घात।
किया सदा प्रमाद से मैंने, उसको मिथ्या करने काज।।
उन दोषों को दूर करन को, भव भयभीत हुआ हूँ मैं।
ईर्यापथ को तज कर अब, ईर्यापथ शुद्धी करता मैं।।१८।।

देववंदना (सामायिक)

(हिन्दी पद्यानुवाद)

ईर्यापथ शुद्धि

दोहा —

हे भगवन् ! ईर्यापथिक, दोष विशोधन हेतु।
प्रतिक्रमण विधि मैं करूँ, श्रद्धा भक्ति समेत।।१।।

चौबोल छंद —

गुप्ति रहित हो षट्कायों की, मैं विराधना जो करता।
शीघ्र गमन प्रस्थान ठहरने, चलने में अरु भ्रमण किया।।२।।

प्राणीगण पर गमन, बीज पर गमन, हरित पर चला कहीं।
मल मूत्रादि नासिका मल कफ, थूक विकृति को तजा कहीं।।३।।

एकेन्द्रिय द्वीइन्द्रिय त्रय-इन्द्रिय चउइन्द्रिय पंचेंद्री।
जीवों को स्वस्थान गमन से, रोका या अन्यत्र कहीं।।४।।

रखा परस्पर पीड़ित कीना, एकत्रित कीना घाता।
ताप दिया या चूर्ण किया, कूटा मूर्च्छित कीना काटा।।५।।

ठहरे चलते फिरते को छिन्न-भिन्न विराधित किया प्रभो।
गुणहेतू प्रायश्चित हेतू, उन्हें विशोधन हेतु प्रभो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हत् के, णवकार मंत्र का जाप्य करूँ।
तब तक पापक्रिया अरु दुश्चरित्र का बिल्कुल त्याग करूँ।।७।।

(सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

(इस प्रतिक्रमण को पढ़कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि गाथा का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार जाप्य देवे अनन्तर पर्यंकासन से या गवासन से बैठकर आलोचना पढ़ें।)

आलोचना

(बैठकर) दोहा —

ईर्यापथ से गमन में, मैंने किया प्रमाद।
एकेन्द्रिय आदिक सभी, जीवों का जो घात।।१।।

किया यदी चउ हाथप्रम, नहीं भूमि को देख।
गुरु भक्ती से पाप सब, हों मिथ्या मम देव!।।२।।

भगवन्! ईर्यापथ आलोचन, करना चाहूँ मैं रुचि से।
पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम, चउदिस विदिशा में चलने से।।३।।

चउकर देख गमन भव्यों का, होता पर प्रमाद से मैं।
शीघ्र गमन से प्राण भूत अरु, जीव सत्त्व को दुःख दीने।।४।।

यदी किया उपघात कराया, अथवा अनुमति दी रुचि से।
श्रीजिनवर की कृपा दृष्टि से, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।५।।

अनन्तर उठकर भगवान को पंचांग नमस्कार करें पुनः भगवान के समक्ष बैठकर कृत्य विज्ञापन करें-

नमोस्तु भगवन् ! देववंदनां करिष्यामि।

सभी भव्य की अर्थ सिद्धि के, कारण उत्तम सिद्धसमूह।
प्रशस्त दर्शन ज्ञान चरित के, प्रतिपादक मैं तुम्हें नमूँ।।१।।

सुरपति के शेखर से चुम्बित, पादपद्म अरुणित केशर।
तीन लोक के मंगल जिनवर, महावीर का करूँ नमन।।२।।

सभी जीव पर क्षमा करूँ मैं, सब मुझ पर भी क्षमा करो।
सभी प्राणियों से मैत्री हो, बैर किसी से कभी न हो।।३।।

राग बंध अरु प्रदोष हर्ष, दीन भाव उत्सुकता को।
भय अरु शोक रती अरती को, त्याग करूँ दुर्भावों को।।४।।

हा! दृष्कृत किये हा! दुश्चिंते, हा! दुर्वचन कहे मैंने।
कर-कर पश्चाताप हृदय में, झुलस रहा हूँ मैं मन में।।५।।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, कृत अपराध विशोधन को।
निन्दा गर्हा से युत हो, प्रतिक्रमण करूँ मन-वच-तन सों।।६।।

सभी प्राणियों में समता हो, संयम हो शुभ भाव रहे।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान त्याग हो, यही श्रेष्ठ सामायिक है।।७।।

भगवन् नमोस्तु! प्रसीदंतु प्रभुपादौ वंदिष्येऽहं एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद् विरतोऽस्मि।

अथ पौर्वाह्णिक[१] देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करें, खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा के द्वारा सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दंडक

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।
तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्मदेशक।।२।।
धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन-ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।
करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।
भगवन् ! सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन कायमन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।
नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूं निंदूं गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

१. मध्यान्ह सामायिक के समय 'माध्यान्हिक' बोलें और सायंकाल की सामायिक के समय 'आपराण्हिक' बोलें।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त कर एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से या बैठकर योगमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर "थोस्सामिस्तव" पढ़ें।)

थोस्सामि स्तवन

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।
लोकोद्योतक धर्म तीर्थकर, श्रीजिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउबीस अर्हंत तथा, केवलि-गण का गुणगान करूँ।।२।।
ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।
सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्मप्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।
जिनवर कुन्थु अरह मल्लिप्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्टनेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।
इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।
कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।
चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदनामुद्रा से हाथ जोड़कर चैत्यभक्ति पढ़ें।)

चैत्यभक्ति

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।

जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।
जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह, भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।

श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिन मूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिनचैत्य जिनालय को।।१८।।

व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।

सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।

अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।

शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।

क्षमादि हैं आवर्त सहस्त्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।

रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं, आस्त्रव रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।

गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।३१।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।

कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अंचलिका (बैठकर)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिक-देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पुनः खड़े होकर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति कर पूर्वोक्त सामायिक दंडक पढ़ें। अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। अनन्तर भगवान के सन्मुख पूर्वोक्त रीति से खड़े-खड़े ही वंदनामुद्रा से नीचे लिखी पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

पंचमहागुरु भक्ति

सुरपति नरपति नागइन्द्र मिल, तीन छत्र धारें प्रभु पर।
पंचमहाकल्याणक सुख के, स्वामी मंगलमय जिनवर।।
अनंत दर्शन ज्ञान वीर्य सुख, चार चतुष्टय के धारी।
ऐसे श्री अर्हंत परमगुरु, हमें सदा मंगलकारी।।१।।

ध्यान अग्निमय बाण चलाकर, कर्मशत्रु को भस्म किये।
जन्म जरा अरु मरणरूप-त्रय नगर जला त्रिपुरारि हुए।।
प्राप्त किये शाश्वत शिवपुर को, नित्य निरंजन सिद्ध बने।
ऐसे सिद्धसमूह हमें नित, उत्तम ज्ञान प्रदान करें।।२।।
पंचाचारमयी पंचाग्नी में जो तप तपते रहते।
द्वादश अंगमयी श्रुतसागर, में नित अवगाहन करते।।
मुक्तिश्री के उत्तम वर हैं, ऐसे श्री आचार्य प्रवर।
महाशीलव्रत ज्ञान-ध्यानरत, देवें हमें मुक्ति सुखकर।।३।।

यह संसार भयंकर दुखकर, घोर महावन है विकराल।
दुखमय सिंह व्याघ्र अति तीक्षण, नख अरु डाढ़ सहित विकराल।।
ऐसे वन में मार्गभ्रष्ट, जीवों को मोक्षमार्ग दर्शक।
हित उपदेशी उपाध्याय गुरु, का मैं वंदन करूँ सतत।।४।।

उग्र-उग्र तप करें त्रयोदश-क्रिया चरित में सदा कुशल।
क्षीण शरीरी धर्मध्यान अरु, शुक्लध्यान में नित तत्पर।।
अतिशय तप लक्ष्मी के धारी, महासाधुगण इस जग में।
महा मोक्षपथगामी गुरुवर, हमको रत्नत्रय निधि दें।।५।।

इस संस्तव से जो जन पंच-परमगुरु का वंदन करते।
वे गुरुतर भव-लता काटकर, सिद्ध सौख्य संपत् लभते।।
कर्मेन्धन के पुंज जलाकर, जग में मान्य पुरुष बनते।
पूर्ण ज्ञानमय परमाह्लादक, स्वात्म सुधारस को चखते।।६।।

—दोहा—

अर्हत् सिद्धाचार्य अरु, पाठक साधु महान।
पंचपरमगुरु हों मुझे, भव - भव में सुखखान।।७।।

अंचलिका (बैठकर)

—दोहा—

भगवन् पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।

अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हंत जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।
अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्य प्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।२।।

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं चैत्य-पंचगुरुभक्ती कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनतिपूर्वक णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़ें। दंडक के अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति करके सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें पुनः भूमिस्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक थोस्सामि इत्यादि स्तव पढ़ें, अंत में पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से नीचे लिखी समाधिभक्ति पढ़ें। तद्यथा—

समाधिभक्ति

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्र के गुण गाऊँ अरु, दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्मतत्त्व को नित भाऊँ।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।१।।
तव चरणांबुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरण युग में।
तावत् रहे जिनेश्वर यावत्, मोक्ष प्राप्ति नहिं हो जग में।।२।।
अक्षर पद से हीन अर्थ, मात्रा से हीन कहा जो मैं।
हे श्रुत मातः! क्षमा करो सब, मम दुःखों का क्षय होवे।।३।।

अंचलिका (बैठकर)

दोहा- भगवन् ! समाधि भक्ति अरु, करके कायोत्सर्ग।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेतु।।१।।
रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

(अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान, जाप्य आदि करें।)

***

गुरुवन्दना

(हिन्दी पद्यानुवाद)

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।
(९ जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति—

समकित दर्शनज्ञान वीर्य, सूक्ष्मत्व तथा अवगाहन हैं।
अव्याबाध अगुरुलघु ये, सिद्धों के आठ महागुण हैं।।१।।

तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

अंचलिका —

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।
(९ जाप्य)

लघु श्रुतभक्ति —

एक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।१।।
अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधरगुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।२।।

अंचलिका —

हे भगवन् ! श्रुत भक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।

प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।

सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्तियुत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय,हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।
(९ जाप्य)

लघु आचार्यभक्ति —

श्रुतसमुद्रपारंगत स्वमत व, परमत ज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्र तपनिधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।१।।

छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रह निपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।२।।

गुरुभक्ति संयम से तिरते, भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्म मरण व्याधी।।३।।

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत, सूर्यचंद्र से तेज अधिक।
मोक्षद्वार उद्घाटन योद्धा, साधु हों प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।

ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

अंचलिका —

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।

पुनः आचार्य देव को नमोऽस्तु करें।

वन्दना के ३२ दोष

किदियम्मंपि करंतो ण होदि किदयम्मणिज्जराभागी।
बत्तीसाणण्णदरं साहू ठाणं विराहंतो[1]।।६१०।।

गाथार्थ — इन बत्तीस स्थानों में से एक भी स्थान की विराधना करता हुआ साधु कृतिकर्म को करते हुए भी कृतिकर्म से होने वाली निर्जरा को प्राप्त नहीं होता है।।६१०।।

वन्दना के ३२ दोष हैं। इन दोषों से रहित वन्दना ही शुद्ध वन्दना है जो कि विपुल निर्जरा का कारण है। इन ३२ दोषों में से किसी एक दोष को करता हुआ भी साधु कृतिकर्म करते हुए भी कृतिकर्म से निर्जरा को करने वाला नहीं होता है। एक हाथ के अन्तराल से अपने शरीरादि के स्पर्श से देव का स्पर्श या गुरु को बाधा न करते हुए अपने अंगादि का पिच्छिका के प्रमार्जन करके साधु वंदना की प्रार्थना करके वन्दना करता है अर्थात् मैं वन्दना करता हूँ ऐसी विज्ञापना करके यदि गुरु की वन्दना करना है तो उनकी स्वीकृति लेकर वन्दना करता हैं।

इन ३२ दोषों को छोड़कर देववन्दना करना चाहिए।

१.अनादृत—वन्दना में आदर भाव नहीं रखना ।

२.स्तब्ध— आठ प्रकार के मद में से किसी के वश हो जाना ।

३.प्रविष्ट— अर्हंतादि के अत्यंत निकट होकर वन्दना करना ।

४. परिपीडित— अपने दोनों हाथों से दोनों जंघाओं या घुटनों का स्पर्श करना ।

५. दोलायित— झूला पर बैठे हुए के समान अर्थात् हिलते हुए वंदना करना ।

६. अंकुशित—अपने ललाट पर अपने हाथ के अंगुष्ठ को अंकुश की तरह रखना।

७. कच्छपरिंगित—बैठकर वन्दना करते हुए कछुये के समान रेंगने की क्रिया करना ।

८. मत्स्योद्वर्त— जिस प्रकार मछली एक भाग को ऊपर करके उछला करती है उसी प्रकार कटिभाग को ऊपर निकाल कर वन्दना करना ।

९. मनोदुष्ट — मन में गुरु आदि के प्रति द्वेष धारण कर वन्दना करना अथवा संक्लेशयुक्त मन सहित वन्दना करना ।

१०. वेदिकाबद्ध—अपने स्तन भागों का मर्दन करते हुए वन्दना करना या दोनों भुजाओं द्वारा अपने दोनों घुटनों को बाँध लेना ।

११.भयदोष— सात प्रकार के भय से डरकर वन्दना करना।

१२. विभ्यद्दोष—गुरु आदि से डरते हुए वन्दना करना ।

---

१. मूलाचार पृ. ४५०।

१३. ऋद्धिगौरव—चातुर्वर्ण्य संघ में भक्त हो जावेगा इस अभिप्राय से वन्दना करना।

१४. गौरव—अपना माहात्म्य आसन आदि द्वारा प्रगट करके अथवा सरस भोजन आदि की स्पृहा रखकर वन्दना करना।

१५. स्तेनित— आचार्य आदि से छिपाकर वन्दना करना। या कोठरी आदि के भीतर छिपकर वन्दना करना।

१६. प्रतिनीत— देव, गुरु आदि के प्रतिकूल होकर वन्दना करना।

१७. प्रदुष्ट—अन्य के साथ द्वेष, वैर, कलह आदि करके पुनः क्षमा न कराकर वन्दनादि क्रिया करना।

१८. तर्जित— अन्यों को तर्जित कर, डर दिखाकर वन्दना करना अथवा आचार्यादि के द्वारा अंगुली आदि से तर्जित—अनुशासित किये जाने पर "यदि वन्दनादि नहीं करोगे तो संघ से निकाल दूँगा" ऐसी फटकार सुन कर वंदना करना।

१९. शब्ददोष—शब्द बोलते हुए वन्दना करना। अथवा "वन्दना करते समय बीच में बातचीत करते जाना।"

२०. हीलित—वचनों द्वारा आचार्यादि का पराभव करके वन्दना करना।

२१. त्रिवलित— वन्दना करते समय कमर, गरदन और हृदय इन अंगों में भंग-बलि पड़ जाना या ललाट में तीन सल डाल कर वन्दना करना।

२२. कुंचित—संकुचित हाथों से सिर का स्पर्श करना या घुटनों के बीच शिर रख कर संकुचित होकर वन्दना करना।

२३. दृष्ट—आचार्यादि यदि देख रहे हों तो ठीक से वन्दनादि करना अन्यथा स्वेच्छा से दिशावलोकन करते हुए वन्दना करना।

२४. अदृष्ट—आचार्यादि न देख सकें। ऐसे स्थान पर जाकर अथवा भूमि, शरीरादि का पिच्छी से परिमार्जन न कर वन्दना में एकाग्रता न रखते हुए वन्दना करना या आचार्यादि के पीछे जाकर वन्दना करना।

२५. संघकरमोचन—यदि मैं संघ को वन्दनारूपी कर भाग नहीं दूँगा तो संघ मेरे ऊपर रुष्ट होगा ऐसे भाव से वन्दना करना।

२६. आलब्ध—उपकरण आदि प्राप्त करके वन्दना करना।

२७. अनालब्ध— उपकरण आदि की आशा से वन्दना करना।

२८. हीन—ग्रन्थ, अर्थ और काल के प्रमाण से रहित वन्दना करना।

२९. उत्तर चूलिका—वन्दना को थोड़े काल में पूर्ण कर उसकी चूलिकारूप आलोचनादि पाठ को अधिक समय तक करना।

३०. मूकदोष—गूंगे के समान वन्दना के पाठ को मुख के भीतर ही बोलना अथवा वन्दना करते समय हुँकार अंगुली आदि से इशारा करना।

३१. दर्दुर—वन्दना के पाठ को इतनी जोर से बोलते हुए महाकल-कल ध्वनि करना कि जिससे दूसरों की ध्वनि दब जाय।

३२. चुरुलित—एक ही स्थान में खड़े होकर हस्तांजलि को घुमाकर सबकी वन्दना करना अथवा पंचम आदि स्वर से गा-गा कर वन्दना करना।

***

कायोत्सर्ग के चार भेद

उत्थित-उत्थित, उत्थितनिविष्ट, उपविष्ट-उत्थित और उपविष्ट-निविष्ट।

जो साधु खड़े होकर जिनमुद्रा से कायोत्सर्ग कर रहे हैं और उनके परिणाम भी धर्मध्यान या शुक्लध्यान रूप हैं उनका वह कायोत्सर्ग उत्थित-उत्थित है।

जो कायोत्सर्ग मुद्रा में तो खड़े हैं किन्तु परिणाम में आर्तध्यान अथवा रौद्रध्यान चल रहा है। उनका वह कायोत्सर्ग उत्थित-निविष्ट है।

जो बैठकर योगमुद्रा से कायोत्सर्ग कर रहे हैं किन्तु अन्तरंग में धर्मध्यान या शुक्लध्यानरूप उपयोग चल रहा है। उनका वह कायोत्सर्ग उपविष्ट-उत्थित है।

जो बैठकर आर्तध्यान या रौद्रध्यानरूप परिणाम कर रहे हैं। उनका वह कायोत्सर्ग उपविष्टनिविष्ट कहलाता है।

इनमें से प्रथम और तृतीय अर्थात् उत्थित-उत्थित और उपविष्टोत्थित ये दो कायोत्सर्ग इष्टफलदायी हैं और शेष दो अनिष्ट फलदायी हैं।

जो प्राणायामविधि से मानसिक जाप्य करने में असमर्थ हैं वे उपांशुरूप वचनोच्चारण-पूर्वक वाचनिक जाप्य करते हैं किन्तु उसके फल में अन्तर पड़ जाता है। यथा—

"कायोत्सर्ग में वचन द्वारा ऐसा उच्चारण करें कि जिससे अपने पास बैठा हुआ भी कोई न सुन सके उसे उपांशु जाप्य कहते हैं। यह वाचनिक जाप्य भी किया जाता है। किन्तु इसका पुण्य सौ गुणा है तो मानसिक जाप्य का पुण्य हजारगुणा अधिक होता है।"

श्री उमास्वामी आचार्य ने इस महामंत्र को हमेशा जपते रहने को कहा है—

उठते, बैठते, चलते, फिरते समय, घर से निकलते समय, मार्ग में चलते समय, घर में कुछ काम करते समय पद-पद पर णमोकार को जो जपते रहते हैं उनके कौन से मनोरथ सफल नहीं हो जाते हैं ? अर्थात् सम्पूर्ण वांछित सिद्ध हो जाते हैं।"

अन्यत्र भी कहा है—

"छींक आने पर, जँभाई लेने पर, खाँसी आदि आने पर या अकस्मात् कहीं वेदना

के उठ जाने पर या चिन्ता हो जाने पर इत्यादि प्रसंगों पर महामंत्र का जाप करना चाहिये। सोते समय और सोकर उठते ही णमोकार मंत्र का स्मरण करना चाहिये।'' कहने का तात्पर्य यही है कि हमेशा महामंत्र का ध्यान व चिंतवन या उच्चारण करते रहना चाहिये ।

इससे विघ्नों का नाश होता है, शांति मिलती है तथा क्रम से ध्यान की सिद्धि होती है।

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम्।
अतिभक्तिसंप्रयुक्तो, यो वन्दते स लघु लभते परमसुखम्।।१।।

कायोत्सर्ग के ३२ दोष

अब कायोत्सर्ग के ३२ दोष बतलाते हैं—

१. घोटकदोष—घोड़े के समान एक पैर उठाकर अर्थात् एक पैर से भूमि को स्पर्श न करते हुए खड़े होना ।

२. लता दोष—वायु से हिलती लता के समान हिलते हुए कायोत्सर्ग करना ।

३. स्तंभदोष—स्तंभ का सहारा लेकर अथवा स्तंभ के समान शून्य हृदय होकर कायोत्सर्ग करना ।

४. कुड्य दोष—दीवाल आदि का आश्रय लेकर कायोत्सर्ग करना ।

५. माला दोष—पीठादि-पाटा आदि के ऊपर आरोहरण कर अथवा मस्तक के ऊपर कोई रज्जु वगैरह वस्तु का आश्रय लेकर खड़े होना ।

६. शबरी दोष—भिल्लनी के समान गुह्य अंग को हाथों से ढक कर या जंघा से जघन को पीड़ित करके खड़े होना ।

७. निगड दोष—अपने दोनों पैरों को बेड़ी से जकड़े हुए की तरह पैरों में बहुत अंतराल करके खड़े होना।

८. लंबोत्तर दोष— नाभि से ऊर्ध्व भाग को लंबा करके अथवा कायोत्सर्ग में स्थित हुए अधिक ऊँचे होना या झुकना ।

९. स्तनदृष्टि दोष—अपने स्तन भाग पर दृष्टि रखना ।

१०. वायस दोष—कौवे के समान इधर-उधर देखना ।

११. खलीन दोष—जैसे घोड़ा लगाम लग जाने से दाँतों को घिसता-कटकट करता हुआ सिर को ऊपर नीचे करता है वैसे ही दाँतों को कट-कटाते हुए सिर को ऊपर नीचे करना।

१२. युग दोष—जैसे कंधे के जुये से पीड़ित बैल गरदन फैला देता है वैसे ही

ग्रीवा को लम्बी करके कायोत्सर्ग करना।

१३. कपित्थ दोष—कैथ की तरह मुट्ठी बाँध कर कायोत्सर्ग करना।

१४. शिरःप्रकंपित दोष—कायोत्सर्ग करते समय सिर हिलाना ।

१५. मूक दोष—मूक मनुष्य के समान मुख विकार करना , नाक सिकोड़ना।

१६. अंगुलि दोष—कायोत्सर्ग करते समय अंगुलियों से गणना करना ।

१७. भ्रूविकार दोष—कायोत्सर्ग करते समय भृकुटियों को चढ़ाना या विकार युक्त करना ।

१८. वारुणीपायी दोष—मदिरापायी के समान झूमते हुए कायोत्सर्ग करना।

१९. से २८ तक दिशावलोकन दोष—कायोत्सर्ग करते समय पूर्वादि दिशाओं का अवलोकन करना । इसमें दश दिशा संबंधी दश दोष हो जाते हैं।

२९. ग्रीवोन्नमन दोष—कायोत्सर्ग करते समय गर्दन को ऊँची उठाना ।

३०. प्रणमन दोष—कायोत्सर्ग में गर्दन अधिक नीचे झुकाना ।

३१. निष्ठीवन दोष—थूकना, श्लेष्मा आदि निकालना ।

३२. अंगामर्श दोष—कायोत्सर्ग करने में शरीर का स्पर्श करना ।

इन बत्तीस दोषों को छोड़कर धीर-वीर साधु दुःखों का नाश करने के लिये माया से रहित, अपनी शक्ति और अवस्था—उम्र के अनुरूप कायोत्सर्ग करते हैं।

विभिन्न ग्रंथों के प्रमाण

षट्खंडागम के प्रमाण

किदियम्मं अरहंत-सिद्ध-आइरिय-बहुसुद- साहूणं पूजाए विहाणं वण्णेइ[१]।

किदियम्मं अरहंत-सिद्धाइरिय-उवज्झाय-गणचिंतय-गणवसहाईणं कीरमाण-पूजाविहाणं वेण्णेदि । एत्थुववुज्जंती गाहा—

दुओणदं जहाजादं बारसावत्तमेव वा ।
चउसीसं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजए[२]।।६४।।

जं तं किरियाकम्मं णाम[३]।।२७।।

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो –

तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम ।।२८।

तं किरियाकम्मं छव्विहं आदाहीणादिभेदेण । तत्थ किरियाकम्मे कीरमाणे अप्पायत्तत्तं अपरवसत्तं आदाहीणं णाम। पराहीणभावेण किरियाकम्मं किण्ण कीरदे ? ण ;

षट्खंडागम के प्रमाण

कृतिकर्म नामका अर्थाधिकार अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु की विधिका वर्णन करता है।

कृतिकर्म अधिकार अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गणचिन्तक (साधुसंघ के कार्यों की चिन्ता करने वाले) और गणवृषभ (गणधर) आदिकोंकी की जाने वाली पूजा के विधान का वर्णन करता है। यहाँ उपयुक्त गाथा—

यथाजात अर्थात् जातरूप के सदृश क्रोधादि विकारों से रहित होकर दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धियों से संयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करना चाहिये।।६४।।

अब क्रिया कर्म का अधिकार है ।।२७।।

इसके अर्थ का खुलासा करते हैं–

आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन बार करना, तीन बार अवनति, चार बार सिर नवाना और बारह आवर्त, यह सब क्रियाकर्म है ।।२८।।

आत्माधीन होना आदि के भेद से वह क्रियाकर्म छह प्रकार का है। उनमें से क्रियाकर्म

---

१. षट्खण्डागम धवला पु. १, पृ. ९८। २. षट्खण्डागम धवला पु. ९, पृ. १८९। ३. षट्खण्डागम पुस्तक १३ (धवला टीका), पृ. ८८ से ९० तक।

तहा किरियाकम्मं कुणमाणस्स कम्मक्खयाभावादो जिणिंदादिअच्चासणदुवारेण कम्म-च। वंदणकाले गुरुजिणजिणहराणं पदख्खिणं काऊण णमंसणं पदाहीणं णाम । पदाहिणणमंसणादिकिरियाणं तिण्णिवारकरणं तिक्खुत्तं णाम। अधवा एक्कम्हि चेव दिवसे जिणगुरुरिसिवंदणाओ तिण्णिवारं किज्जंति त्ति तिक्खुत्तं णाम। तिसंज्झासु चेव वंदणा कीरदे अण्णत्थ किण्ण कीरदे ? ण; अण्णत्थ वि तप्पडिसेहणियमाभावादो । तिसंज्झासु वंदणणियमपरूवणट्ठं तिक्खुत्तमिदि भणिदं । ओणदं अवनमनं भूमावासनमित्यर्थः । तं च तिण्णिवारं कीरदे त्ति तियोणदमिदि भणिदं । तं जहा—सुद्धमणो धोदपादो जिणिंददंसण-जणिदहरिसेण पुलइदंगो संतो जं जिणस्स अग्गे बइसदि तमेगमोणदं। जमुट्ठिऊण जिणिंदादीणं विण्णत्तिं कादूण बइसणं तं बिदियमोणदं । पुणो उट्ठिय सामाइयदंडएण अप्पसुद्धिं काऊणसकसायदेहुस्सग्गं करिय जिणाणंतगुणे ज्झाइय चउवीसतित्थयराणं वंदणं काऊण पुणो जिणजिणालयगुरवाणं संथवं काऊण जं भूमीए बइसणं तं तदियमोणदं। एवं एक्केक्कम्हि किरियाकम्मे फीरमाणे तिण्णि चेव ओणमणाणि होंति । सव्वकिरियाकम्मं चदुसिरं होदि।

करते समय आत्माधीन होना अर्थात् परवश न होना आत्माधीन होना कहलाता है।

शंका—पराधीनभाव से क्रियाकर्म क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकार क्रियाकर्म करने वाले के कर्मों का क्षय नहीं होता और जिनेंद्रदेव आदि की आसादना होने से कर्मों का बन्ध होता है।

वंदना करते समय गुरु, जिन और जिनगृह की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रियाओं का तीन बार करना त्रिःकृत्वा है। अथवा एक ही दिन में जिन, गुरु और ऋषियों की वदंना तीन बार की जाती है, इसलिये इसका नाम त्रिःकृत्वा है।

शंका—तीनों ही संध्याकालों में वंदना की जाती है, अन्य समय में क्यों नहीं की जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्य समय में भी वंदना के प्रतिषेध का कोई नियम नहीं है। तीनों सन्ध्या कालों में वंदना के नियम का कथन करने के लियें 'त्रिःकृत्वा' ऐसा कहा है।

'ओणद' का अर्थ अवनमन अर्थात् भूमि में बैठना है। वह तीन बार किया जाता है। इसलिये तीन बार अवनमन करना कहा है। यथा—शुद्धमन, धौतपाद और जिनेंद्र के दर्शन से उत्पन्न हुये हर्ष से पुलकित वदन होकर जो जिनदेव के आगे बैठना, यह प्रथम अवनति है। तथा जो उठकर जिनेंद्र आदि के सामने विज्ञप्ति कर बैठना, यह दूसरी अवनति है। फिर उठकर सामायिक दण्डक के द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषाय सहित देह का उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) करके, जिनदेव के अनन्त गुणों का ध्यान करके, चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करके फिर

तं जहा — सामाइयस्स आदीए जं जिणिंदं पडि सीसणमणं तमेगं सिरं। तस्सेव अवसाणे जं सोसणमणं तं विदियं सीसं। थोस्सामिदंडयस्स आदीए जं सीसणमणं तं तदियं सिरं। तस्सेव अवसाणे जं णमणं तं चउत्थं सिरं। एवमेगं किरियाकम्मं चदुसिरं होदि। ण अण्णत्थ णवणपडिसेहो एदेण कदो, अण्णत्थणवणणियमस्स पडिसेहाकरणादो। अधवा सव्वं पि किरियाकम्मं चदुसिरं चदुप्पहाणं होदि ; अरहंतसिद्धसाहुधम्मे चेव पहाणभूदे कादूण सव्वकिरियाकम्माणं पउत्ति-दंसणादो। सामाइय थोस्सामिदंडयाणं आदीए अवसाणे च मणवयणकायाणं विसुद्धिपरावत्तणवारा बारम हवंति। तेण एगं किरियाकम्मं बारसावत्तमिदि भणिदं। एदं सव्वं पि किरियाकम्मं णाम।

जिन, जिनालय और गुरु की स्तुति करके जो भूमि में बैठना, वह तीसरी अवनति है। इस प्रकार एक-एक क्रियाकर्म करते समय तीन ही अवनति होती हैं।

सब क्रियाकर्म चतुःशिर होता है। यथा — सामायिक के आदि में जो जिनेंद्रदेव को सिर नवाना वह एक सिर है। उसी के अन्त में जो सिर नवाना वह दूसरा सिर है। 'थोस्सामि' दण्डक के आदि में जो सिर नवाना वह तीसरा सिर है। तथा उसी के अन्त में जो नमस्कार करना वह चौथा सिर है। इसप्रकार एक क्रियाकर्म चतुःशिर होता है। इससे अन्यत्र नमन का प्रतिषेध नहीं किया गया है, क्योंकि, शास्त्र में अन्यत्र नमन करने के नियम का कोई प्रतिषेध नहीं है। अथवा सभी क्रियाकर्म चतुःशिर अर्थात् चतुःप्रधान होता है, क्योंकि, अरिहंत, सिद्ध, साधु, और धर्म को प्रधान करके सब क्रियाकर्मों की प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और थोस्सामि दण्डक के आदि और अन्त में मन, वचन और काय की विशुद्धि के परावर्तन के बार बारह होते हैं, इसलिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्त से युक्त कहा है। यह सब ही क्रियाकर्म है।

मूलाचार ग्रन्थ के प्रमाण[१]

सामायिक का विशेष अर्थ कहते हैं —

जीविदमरणे लाभालाभे संजोयविप्पओगे य।
बंधुरिसुहदुक्खादिसु समदा सामाइयं णाम।।२३।।

आचारवृत्ति टीका-

जीविदमरणे — जीवितमौदारिकवैक्रियिकादिदेहधारणं, मरणं मृत्युः प्राणिप्राणवियोग-लक्षणं, जीवितं च मरणं च जीवितमरणे तयोर्जीवितमरणयोः। **लाभालाभे** — लाभोऽभिलषितप्राप्तिः, अलाभोऽभिलषितस्याप्राप्तिः लाभश्चालाभश्च लाभालाभौ तयोर्लाभालाभयोराहारोपकरणादिषु प्राप्त्यप्राप्त्योः। **संजोयविप्पओगे य** — संयोग-इष्टादिसन्निकर्षः, विप्रयोग इष्टवियोगः संयोगश्च विप्रयोगश्च संयोगविप्रयोगौ तयोः संयोगविप्रयोगयोः, इष्टानिष्टसन्निकर्षासन्निकर्षयोः। **बन्धूरिसुखदुक्खादिसु** — बन्धुश्च अरिश्च सुखं च दुखं च बन्ध्वरिसुखदुःखानि तान्यादीनि येषां ते बन्ध्वरिसुखदुःखादयस्तेशु स्वजनमित्रशत्रुसुखदुःखक्षुत्पिपासाशीतोष्णादिषु। **समदा** — समता-चारित्रानुविद्ध-समपरिणामः। **सामाइयं णाम** — सामायिकं नाम भवति। जीवितमरण-लाभालाभसंयोग-विप्रयोगबन्ध्वरिसुख-दुःखादिषु यदेतत्समत्वं समानपरिणामः **त्रिकालदेववन्दनाकरणं च तत्सामायिकं व्रतं भवतीत्यर्थः।।**

मूलाचार ग्रन्थ के प्रमाण[१]

गाथार्थ — जीवन-मरण में, लाभ-अलाभ में, संयोग-वियोग में, मित्र-शत्रु में तथा सुख-दुःख इत्यादि में समभाव होना सामायिक नाम का व्रत है ।।२३।।

आचारवृत्तिटीका — औदारिक, वैकियिक आदि शरीर की स्थिति रहना जीवन है। प्राणियों के प्राणवियोगलक्षण मृत्यु को मरण कहते हैं। अभिलषित वस्तु आहार उपकरण आदि की प्राप्ति का नाम लाभ है और अभिलषित की प्राप्ति न होना अलाभ है। इष्ट आदि पदार्थ का सम्बन्ध होना — मिल जाना संयोग है और इष्ट का अपने से पृथक् हो जाना वियोग है अर्थात् इष्ट का संयोग या वियोग हो जाना अथवा अनिष्ट का संयोग या वियोग हो जाना संयोग-वियोग है। इन सभी में तथा स्वजन, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख में और आदि शब्द से भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि में चारित्र से समन्वित समभाव का होना ही सामायिक व्रत है **और त्रिकालदेववन्दना करना वही सामायिकव्रत होता है ऐसा यहाँ अर्थ है।**

---

१. मूलाचार पृ. २९, ३९१ से ३९२, ४०७, ४२८, ४२९, ४४१ से ४४४ तक।

आवश्यकनिर्युक्तेर्निरुक्तिमाह—

ण वसो अवसो अवसस्सकम्ममावस्सयंति बोधव्वा।
जुत्तित्ति उवायत्ति य णिरवयवा होदि णिज्जुत्ती।।५१५।।

न वश्यः पापादेरवश्यो यदेन्द्रियकषायेषत्कषायरागद्वेषादिभिरनात्मीय कृतस्तस्यावश्यकस्य यत्कर्मानुष्ठानं तदावश्यकमिति बोद्धव्यं ज्ञातव्यं। युक्तिरिति उपाय इति चैकार्थः। निरवयवा सम्पूर्णाऽखण्डिता भवति निर्युक्तिः। आवश्यकानां निर्युक्तिरावश्यकनिर्युक्तिरावश्यकसम्पूर्णोपायः अहोरात्रमध्ये साधूनां यदाचरणं तस्यावबोधकं पृथक्पृथक्स्तुति स्वरूपेण "जयति भगवानित्यादि" प्रतिपादकं यत्पूर्वापराविरुद्धं शास्त्रं न्यायआवश्यकनिर्युक्तिरित्युच्यते । सा च षट्प्रकारा भवति ।।५१५।।

तस्य भेदान् प्रतिपादयन्नाह—

सामाइय चउवीसत्थव वंदणयं पडिक्कमणं।
पच्चक्खाणं च तहा काओसग्गो हवदि छट्ठो।।५१६।।

अब आवश्यकनिर्युक्ति का निरुक्ति अर्थ कहते हैं—

गाथार्थ—जो वश में नहीं है वह अवश है। उस अवश की मुनि की क्रिया को आवश्यक जानना चाहिये । युक्ति और उपाय एक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण उपाय निर्युक्ति कहलाता है। ।।५१५।।

आचारवृत्ति—जो पाप आदि के वश्य नहीं है वे अवश्य हैं। जब जो इन्द्रिय,कषाय,नोकषाय और राग-द्वेष आदि के द्वारा आत्मीय नहीं किये गये हैं अर्थात् जिस समय इन इन्द्रिय कषाय आदिकों ने जिन्हें अपने वश में नहीं किया है उस समय वे मुनि अवश्य होने से आवश्यक कहलाते हैं और उनका जो कर्म अर्थात् अनुष्ठान है वह आवश्यक कहा गया है ऐसा जानना चाहिए । युक्ति और उपाय ये एकार्थवाची हैं, उस निरवयव अर्थात् सम्पूर्ण—अखण्डित उपाय को निर्युक्ति कहते हैं । आवश्यकों की जो निर्युक्ति है उसे आवश्यक निर्युक्ति कहते हैं अर्थात् आवश्यक का सम्पूर्णतया उपाय आवश्यक निर्युक्ति है।

अहोरात्र के मध्य साधुओं का जो आचरण है उसको बतलाने वाले जो पृथक्-पृथक् स्तुति रूप से "जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-" इत्यादि के प्रतिपादक जो पूर्वापर से अविरुद्ध शास्त्र हैं जो कि न्यायरूप हैं, उन्हें आवश्यक निर्युक्ति कहते हैं। उस आवश्यक निर्युक्ति के छह प्रकार हैं।

भावार्थ—यहाँ पर आवश्यक क्रियाओं के प्रतिपादक शास्त्रों को भी आवश्यक निर्युक्ति शब्द से कहा है सो कारण में कार्य का उपचार समझना ।

अब उन आवश्यकनिर्युक्ति के भेदों का प्रतिपादन करते हैं—

समः सर्वेषां समानो यो सर्गः पुण्यं वा समायस्तस्मिन् भवं, तदेव प्रयोजनं पुण्यं तेन दीव्यतीति वा सामायिकं समये भवं वा सामायिकं। चतुर्विंशतिस्तवः चतुर्विंशतितीर्थंकराणां स्तवः स्तुतिः । वन्दना सामान्यरूपेण स्तुतिर्जयति भगवानित्यादि, पंचगुरुभक्तिपर्यन्ता पंचपरमेष्ठिविषयनमस्कारकरणं वा शुद्धभावेन। प्रतिक्रमणं व्यतिक्रान्तदोषनिर्हरणं व्रताद्युच्चारणं च । प्रत्याख्यानं भविष्यत्कालविषयवस्तुपरित्यागश्च। तथा कायोत्सर्गो भवति षष्ठः। सामायिकावश्यकनिर्युक्तिः चतुर्विंशतिस्तवाश्यकनिर्युक्तिः, वन्दनावश्यकनिर्युक्तिः, प्रतिक्रमणावश्यकनिर्युक्तिः, प्रत्याख्यानावश्यकनिर्युक्तिः, कायोत्सर्गावश्यकनिर्युक्तिरिति ।।५१६।।

सामायिककरणक्रममाह—

पडिलिहियअंजलिकरो उवजुत्तो उट्ठिऊण एयमणो।
अव्वाखित्तो वुत्तो करेदि सामाइयं भिक्खू।।५३८।।

गाथार्थ—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और छठा कायोत्सर्ग ये छह हैं।।५१६।।

आचारवृत्ति—सम अर्थात् सभी का समानरूप जो सर्ग अथवा पुण्य है उसे 'समाय' कहते है (पुण्य का नाम 'सम' भी है अतः पुण्य के पर्यायवाची शब्द से सम +अय =समाय बना है। उसमें जो होवे सो सामायिक है। यहाँ 'समाय' में इकण् प्रत्यय होकर बना है) अथवा वही पुण्य प्रयोजन है जिसका, अथवा 'तेन दीव्यति' उस समाय से शोभित होता है (इस अर्थ में भी इकण् प्रत्यय हो गया है) अथवा समय में जो होवे सो सामायिक है। चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति को चतुर्विंशतिस्तव कहते हैं।

सामान्यरूप से "जयति भगवान् हेमांभोजप्रचारविजृंभिता-" इत्यादि चैत्यभक्ति से लेकर पंचगुरुभक्ति पर्यन्त विधिवत् जो स्तुति की जाती है उसे वन्दना कहते हैं अथवा शुद्ध भाव से पंचपरमेष्ठी विषयक नमस्कार करना वन्दना है। पूर्व में किये गये दोषों का निराकरण करना और व्रतादि का उच्चारण करना अर्थात् व्रतों के दण्डकों का उच्चारण करते हुए उन सम्बन्धी दोषों को दूर करने के लिए 'मिच्छा मे दुक्कडं 'बोलना सो प्रतिक्रमण है। भविष्यकाल के लिए वस्तु का त्याग करना प्रत्याख्यान हैं। तथा काय से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है। इस प्रकार सामायिक आवश्यकनिर्युक्ति,चतुर्विंशति आवश्यकनिर्युक्ति, वन्दना आवश्यकनिर्युक्ति,प्रतिक्रमण आवश्यकनिर्युक्ति, प्रत्याख्यान आवश्यकनिर्युक्ति और कायोत्सर्ग आवश्यकनिर्युक्ति ये छह भेद हैं।

अब सामायिक करने का क्रम कहते हैं—

गाथार्थ— प्रतिलेखन सहित अंजलि जोड़कर, उपयुक्त हुआ, उठकर एकाग्रमन

प्रतिलेखितावञ्जलिकरौ येनासौ प्रतिलेखिताञ्जलिकरः । उपयुक्तः समाहितमतिः,उत्थाय-स्थित्वा,एकाग्रमना अव्याक्षिप्तः, आगमोक्तक्रमेण करोति सामायिकं भिक्षुः । अथवा प्रतिलेख्य शुद्धो भूत्वा द्रव्यक्षेत्रकालभावशुद्धिं कृत्वा, प्रकृष्टाञ्जलि करमुकलितकरः प्रतिलेखनेन सहिताञ्जलिकरो वा सामायिकं करोतीति ।।५३८।।

नामवंदनां प्रतिपादयन्नाह—

किदियम्मं चिदियम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं च।
कादव्वं केण कस्स व कधे व कहिं व कदिखुत्तो।।५७८।।

पूर्वगाथार्धेन वंदनाया एकार्थः कथ्यतेऽपरार्द्धेन तद्विकल्पा इति । कृत्यते छिद्यते अष्टविधं कर्म येनाक्षरकदंबकेन परिणामेन क्रियया वा तत्कृतिकर्म

होकर, मन को विक्षेप रहित करके, मुनि सामायिक करता है।।५३८।।

आचारवृत्ति—जिन्होंने पिच्छी को लेकर अंजलि जोड़ ली है, जो सावधान बुद्धि वाले हैं, वे मुनि व्याक्षिप्त चित्त न होकर, खड़े होकर एकाग्रमन होते हुए, आगम में कथित विधि से सामायिक करते हैं। अथवा पिच्छी से प्रतिलेखन करके शुद्ध होकर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव शुद्धि को करके प्रकृष्टरूप से अंजलि को मुकुलित कमलाकार बना कर अथवा प्रतिलेखन पिच्छिका सहित अंजलि जोड़कर सामायिक करते हैं।

नाम वन्दना का प्रतिपादन करते हैं—

गाथार्थ—कृतिकर्म,चितिकर्म,पूजाकर्म और विनयकर्म ये वन्दना के एकार्थ नाम हैं। किसको, किसकी, किस प्रकार से, किस समय और कितनी बार वन्दना करना चाहिये ।।५७८।।

आचारवृत्ति—गाथा के पूर्वार्ध से वन्दना के पर्यायवाची नाम कहे हैं अर्थात् कृतिकर्म आदि वन्दना के ही नाम हैं। तथा गाथा के अपरार्ध से वन्दना के भेद कहे हैं।

कृतिकर्म—जिस अक्षर समूह से या जिस परिणाम से अथवा जिस क्रिया से आठ प्रकार का कर्म काटा जाता है—छेदा जाता हैं वह कृतिकर्म कहलाता है अर्थात् पापों के विनाशन का उपाय कृतिकर्म है।

चितिकर्म—जिस अक्षर समूह से या परिणाम से अथवा क्रिया से तीर्थंकरत्व आदि पुण्य कर्म का चयन होता है- सम्यक् प्रकार से अपने साथ एकीभाव होता है या संचय होता है, वह पुण्य संचय का कारणभूत चितिकर्म कहलाता है।

पूजाकर्म—जिन अक्षर आदिकों के द्वारा अरिहंत देव आदि पूजे जाते हैं—अर्चे जाते हैं ऐसा बहुवचन से उच्चारण कर उनको जो पुष्पमाला, चन्दन आदि चढ़ाये जाते

पापविनाशनोपापः । चीयते समेकीक्रियते संचीयते पुण्यकर्म तीर्थकरत्वादि येन तच्चितिकर्म पुण्यसंचयकारणं । पूज्यंतेऽर्च्यन्तेऽर्हदादयो येन तत्पूजाकर्म बहुवचनोच्चारणस्रक्चंदनादिकं । विनीयंते निराक्रियन्ते संक्रमणोदयोदीरणादि-भावेन प्राप्यंते येन कर्माणि तद्विनयकर्म । शुश्रूषणं तत्क्रिया कर्म कर्तव्यं केन कस्य कर्तव्यं कथमिव केन विधानेन कर्त्तव्यं कस्मिन्नवस्थाविशेषे कर्त्तव्यं कतिवारान्।।५७८।।

तथा—

कदि ओणदं कदि सिरं कदिए आवत्तगेहिं परिसुद्धं।
कदिदोसविप्पमुक्कं किदियम्मं होदि कादव्वं।।५७९।।

कदि ओणदं—कियन्त्यवनतानि । कति करमुकुलांकितेन शिरसा भूमिस्पर्शनानि कर्त्तव्यानि। **कदि सिरं**- कियन्ति शिरांसि कतिवारान् शिरसि करकुड्मलं कर्त्तव्यं । **कदि आवत्तगेहिं परिसुद्धं**-कियद्भिरावर्त्तकैः परिशुद्धं कतिवारान्मनोवचनकाया आवर्त्तनीयाः। **कदि दोसविप्पमुक्कं**- कति दोषैर्विप्रमुक्तं कृतिकर्म भवति कर्त्तव्यमिति।।५७९।।

'कस्मिन्स्थाने' यदेतत्सूत्रं स्थापितं तद्व्याख्यातमिदानीं कतिबारं कृतिकर्म कर्तव्यमिति

हैं वह पूजाकर्म कहलाता है।

विनयकर्म—जिसके द्वारा कर्मों का निराकरण किया जाता है अर्थात् कर्म संक्रमण, उदय, उदीरणा आदि भाव से प्राप्त करा दिये जाते हैं वह विनय है जोकि शुश्रुषारूप है।

वह वन्दनाक्रिया नामक आवश्यककर्म किसे करना चाहिए ? किसकी करना चाहिए ? किस विधान से करना चाहिए ? किस अवस्था विशेष में करना चाहिये ? और कितनी बार करना चाहिए ? इस आवश्यक के विषय में ऐसी प्रश्नमाला होती है।

उसी प्रकार से और भी प्रश्न होते हैं—

गाथार्थ—कितनी अवनति, कितनी शिरोनति, कितने आवर्तों से परिशुद्ध, कितने दोषों से रहित कृतिकर्म करना चाहिए ।।५७९।।

आचारवृति—हाथों को मुकुलित जोड़कर, मस्तक से लगाकर शिर से भूमि स्पर्श करके जो नमस्कार होता है उसे अवनति या प्रणाम कहते हैं। वह अवनति कितनी बार करना चाहिए ? मुकुलित—जुड़े हुए हाथ पर मस्तक रखकर नमस्कार करना शिरोनति है सो कितनी होनी चाहिए ? मनवचनकाय का आवर्तन करना या अंजुलि, जुड़े हाथों को घुमाना सो आवर्त हैं—यह कितनी बार करना चाहिए ? एवं कितने दोषों से रहित यह कृतिकर्म होना चाहिए ?

'अब कितनी बार कृतिकर्म करना चाहिए' जो यह प्रश्न हुआ था उसका व्याख्यान

यत्सूत्र स्थापितं तद्व्याख्यानायाह—

चत्तारि पडिक्कमणे किदियम्मा तिण्णि होंति सज्झाए।
पुव्वण्हे अवरण्हे किदियम्मा चोद्दसा होंति।।६०२।।

सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतितीर्थकरस्तवपर्यन्तः कृतिकर्मेत्युच्यते। प्रतिक्रमणकाले चत्वारि क्रियाकर्माणि स्वाध्यायकाले च त्रीणि क्रियाकर्माणि भवंत्येवं पूर्वाण्हे क्रियाकर्माणि सप्त तथाऽपराण्हे च क्रियाकर्माणि सप्तैवं पूर्वाण्हेऽपूर्वाण्हे च क्रियाकर्माणि चतुर्दश भवंतीति। कथं प्रतिक्रमणे चत्वारि क्रियाकर्माणि, आलोचनाभक्तिकरणे कायोत्सर्ग एकं क्रियाकर्म तथा प्रतिक्रमणभक्तिकरणे कायोत्सर्गः द्वितीयं क्रियाकर्म तथा वीरभक्तिकरणे कायोत्सर्गस्तृतीयं क्रियाकर्म तथा चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकरणे शांतिहेतोः कायोत्सर्गश्चतुर्थं क्रियाकर्म। कथं च स्वाध्याये त्रीणि क्रियाकर्माणि, श्रुतभक्तिकरणे कायोत्सर्ग एकं क्रियाकर्म तथाऽऽचार्यभक्तिक्रियाकरणे द्वितीयं क्रियाकर्म तथा स्वाध्यायोपसंहारे

करते हैं—

गाथार्थ—प्रतिक्रमण में चार कृतिकर्म, स्वाध्याय में तीन ये पूर्वाह्न और अपराह्न से सम्बन्धित ऐसे चौदह कृतिकर्म होते हैं।।६०२।।

आचारवृत्ति—सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तवपर्यंत जो क्रिया है उसे 'कृतिकर्म' कहते हैं। प्रतिक्रमण में चार कृतिकर्म और स्वाध्याय में तीन कृतिकर्म इस तरह पूर्वाह्न सम्बन्धी क्रियाकर्म सात होते हैं तथा अपराह्न सम्बन्धी क्रियाकर्म भी सात होते हैं। ऐसे चौदह क्रियाकर्म होते हैं।

प्रतिक्रमण में चार कृतिकर्म कैसे होते हैं ?

आलोचना भक्ति (सिद्धभक्ति) करने में कायोत्सर्ग होता है वह एक क्रियाकर्म हुआ। प्रतिक्रमण भक्ति के करने में कायोत्सर्ग होता है वह दूसरा क्रियाकर्म हुआ। वीर-भक्ति के करने में जो कायोत्सर्ग हैं वह तृतीय क्रियाकर्म हुआ तथा चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति के करने में शांति के लिए जो कायोत्सर्ग है वह चतुर्थ क्रियाकर्म है। इस तरह प्रतिक्रमण में चार क्रियाकर्म हुए।

स्वाध्याय में तीन कृतिकर्म कैसे हैं ?

स्वाध्याय के प्रारम्भ में श्रुतभक्ति के करने में कायोत्सर्ग होता है वह एक कृतिकर्म है तथा आचार्यभक्ति की क्रिया करने में जो कायोत्सर्ग है वह दूसरा कृतिकर्म है। तथा स्वाध्याय की समाप्ति में श्रुतभक्ति करने में जो कायोत्सर्ग है वह तीसरा कृतिकर्म है। इस तरह जाति की अपेक्षा तीन क्रियाकर्म स्वाध्याय में होते हैं। शेष वन्दना आदि क्रियाओं का इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है। प्रधान पद का ग्रहण किया है जिससे पूर्वाह्न

श्रुतभक्तिकरणे कायोत्सर्गस्तृतीयं क्रियाकर्मैवं जातिमपेक्ष्य त्रीणि क्रियाकर्माणि भवंति स्वाध्याये शेषाणां वंदनादिक्रियाकर्मणामत्रैवान्तर्भावो द्रष्टव्यः।

प्रधानपदोच्चारणं कृतं यतः पूर्वाण्हे दिवस इति एवमपराण्हे रात्रावपि द्रष्टव्यं भेदाभावात् अथवा पश्चिमरात्रौ प्रतिक्रमणे क्रियाकर्माणि चत्वारि स्वाध्याये त्रीणि वंदनायां द्वे, सवितर्युदिते स्वाध्याये त्रीणि मध्याह्नवंदनायां द्वे एवं पूर्वाण्हक्रियाकर्माणि चतुर्दश भवन्ति; तथाऽपराण्हवेलायां स्वाध्याये त्रीणि क्रियाकर्माणि प्रतिक्रमणे चत्वारि वंदनायां द्वे योगभक्तिग्रहणोपसंहारकालयोः द्वे रात्रौ प्रथमस्वाध्याये त्रीणि। एवमपराण्हक्रियाकर्माणि चतुर्दश भवंति प्रतिक्रमणस्वाध्यायकालयोरुपलक्षणत्वादिति, अन्यान्यपि क्रियाकर्माण्यि-त्रैवान्तर्भवन्ति नाव्यापकत्वमिति संबंधः। पूर्वाण्हसमीपकालः पूर्वाण्ह इत्युच्यतेऽपराण्ह-समीपकालोऽपराण्ह इत्युच्यते तस्मान्न दोष इति ।।६०२।।

स्वाध्याये द्वादशेष्टा षड्वन्दनेऽष्टौ प्रतिक्रमे ।
कायोत्सर्गा योगभक्तौ द्वौ चाहोरात्रगोचराः[1]।।७५।।

कहने से दिवस का और अपराह्न कहने से रात्रि का भी ग्रहण हो जाता है, क्योंकि पूर्वाह्न से दिवस में और अपराह्न से रात्रि में कोई भेद नहीं है।

अथवा पश्चिम रात्रि के प्रतिक्रमण में क्रियाकर्म चार, स्वाध्याय में तीन और वन्दना में दो, सूर्य उदय होने के बाद स्वाध्याय के तीन, मध्याह्न वन्दना के दो इसप्रकार से पूर्वाण्ह संबंधी क्रियाकर्म चौदह होते हैं। तथा अपराह्नबेला में स्वाध्याय में तीन क्रियाकर्म, प्रतिक्रमण में चार, वन्दना में दो, योगभक्ति ग्रहण और उपसंहार में दो एवं रात्रि में प्रथम स्वाध्याय के तीन इस तरह अपराह्न संबंधी क्रियाकर्म चौदह होते हैं। गाथा में प्रतिक्रमण और स्वाध्याय काल उपलक्षणरूप हैं इससे अन्य भी क्रियाकर्म इन्हीं में अन्तर्भूत हो जाते हैं। अतः अव्यापक दोष नहीं आता है। चूँकि पूर्वाह्न के समीप का काल पूर्वाह्न कहलाता है और अपराह्न के समीप का काल अपराह्न कहलाता है इसलिये कोई दोष नहीं है।

भावार्थ—मुनि के अहोरात्र सम्बन्धी अट्ठाईस कायोत्सर्ग कहे गये हैं। उन्हीं का यहाँ वर्णन किया गया है। यथा दैवसिक-रात्रिक इन दो प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्ग ८, त्रिकालदेववन्दना सम्बन्धी ६, पूर्वाह्न, अपराह्न, तथा पूर्वरात्रि और अपररात्रि इन चार काल में तीन बार स्वाध्याय संबंधी १२, रात्रियोग ग्रहण और विसर्जन इन दो समयों में दो बार योगभक्ति संबंधी २, कुल मिलाकर २८ होते हैं। अन्यत्र ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख है यथा—

अर्थ—स्वाध्याय के बारह, वन्दना के छह, प्रतिक्रमण के आठ और योगभक्ति

---

१. अनगारधर्मामृत अ. ८, पृ. ५९७।

कत्यवनतिकरणमित्यादि यत्पृष्टं तदर्थमाह—

दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे।।६०३।।

आचारवृत्ति टीका-

दोणदं—द्वे अवनती पंचनमस्कारादावेकावनतिर्भूमिसंस्पर्शस्तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ द्वितीयाऽवनतिः शरीरनमनं द्वे अवनती **जहाजादं**-यथाजातं जातरूपसदृशं क्रोधमानमाया-संगादिरहितं । **बारसावत्तमेव य** द्वादशावर्त्ता एवं च पंचनमस्कारोच्चारणादौ मनोवचनकायानां संयमनानि शुभयोगवृत्तयस्त्रय आवर्त्तास्तथा पंचनमस्कारसमाप्तौ मनोवचन-कायानां शुभवृत्तयस्त्रीण्यन्यान्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ मनोवचनकायाः शुभवृत्तस्त्रीण्यपराण्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवसमाप्तौ शुभमनोवचनकायवृत्तयस्त्रीण्या-वर्त्तनान्येवं द्वादशधा मनोवचनकायवृत्तयो द्वादशावर्त्ता भवति, अथवा चतसृषु दिक्षु चत्वारः

के दो ऐसे अहोरात्र सम्बन्धी अट्ठाईस कायोत्सर्ग होते हैं।

'कितनी अवनति करना ?' इत्यादि रूप जो प्रश्न हुए थे उन्हीं का उत्तर देते हैं—

गाथार्थ—जातरूप सदृश दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धि सहित कृतिकर्म का प्रयोग करें ।।६०३।।

आचारवृति—दो अवनति—पंचनमस्कार के आदि में एक बार अवनति अर्थात् भूमि स्पर्शनात्मक नमस्कार करना तथा चतुर्विंशतिस्तव के आदि में दूसरी बार अवनति—शरीर का नमाना अर्थात् भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना ये दो अवनति हैं। यथाजात-जातरूप सदृश क्रोध,मान,माया और संग—परिग्रह या लोभ आदि रहित कृतिकर्म को मुनि करते हैं। द्वादश आवर्त—पंच नमस्कार के उच्चारण के आदि में मन वचन काय के संयमनरूप शुभयोगों की प्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त पंचनमस्कार की समाप्ति में मनवचनकाय की शुभप्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त, तथा चतुर्विंशति स्तव की आदि में मन वचन काय की शुभप्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त एवं चतुर्विंशति स्तव की समाप्ति में शुभ मन वचन काय की प्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त—ऐसे मन वचन काय की शुभप्रवृत्ति रूप बारह आवर्त होते हैं। अथवा चारों ही दिशाओं में चार प्रणाम एक भ्रमण में ऐसे ही तीन बार के भ्रमण में बारह हो जाते हैं।

चतुःशिर—पंचनमस्कार के आदि और अन्त में कर मुकुलित करके अंजलि जोड़कर माथे से लगाना तथा चतुर्विंशति स्तव के आदि और अन्त में मुकुलित करके माथे से लगाना ऐसे चार शिर—शिरोनति होती हैं।

इस तरह इस एक कृतिकर्म में दो अवनति, बारह आवर्त और चार शिरोनमन होते हैं।

प्रणामा एकस्मिन् भ्रमणे एवं त्रिषु भ्रमणेषु द्वादश भवंति, **चदुस्सिरं** चत्वारि शिरांसि पंचनमस्कारस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणं तथा चतुर्विंशतिस्तवस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणमेवं चत्वारि शिरांसि भवंति, **त्रिशुद्धं** मनोवचनकायशुद्धं क्रियाकर्म प्रयुंक्ते करोति । द्वे अवनती यस्मिन् तत् द्वयवनति क्रियाकर्म द्वादशावर्त्ताः यस्मिंस्तत् द्वादशावर्त्तं, मनोवचनकायशुद्धया चत्वारि शिरांसि यस्मिन् तत् चतुःशिरः क्रियाकर्मैवं विशिष्टं यथाजातं क्रियाकर्म प्रयुंजीतेति ।।६०३।।

मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक मुनि इस विधानयुक्त यथाजात कृतिकर्म का प्रयोग करें।

विशेषार्थ—एक बार के कायोत्सर्ग में यह उपर्युक्त विधि की जाती है उसी का नाम कृतिकर्म है। यह विधि देववन्दना, प्रतिक्रमण आदि सर्व क्रियाओं में भक्तिपाठ के प्रारम्भ में की जाती है। जैसे देववन्दना में चैत्यभक्ति के प्रारम्भ में—

'अथ पौर्वाण्हिक-देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं' ।

यह प्रतिज्ञा हुई, इसको बोलकर भूमि स्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करें । यह एक अवनति हुई । अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके 'णमो अरिहंताणं.... चत्तारिमंगलं...अड्ढाइज्जदीव....इत्यादि पाठ बोलते हुए... दुच्चरियं वोस्सरामि' तक पाठ बोले यह सामायिक स्तव कहलाता है। पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। इस तरह सामायिक दण्डक के आदि और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति होने से छह आवर्त और दो शिरोनति हुई। पुनः नौ बार णमोकार मन्त्र को सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में जपकर भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करें । इस तरह प्रतिज्ञा के अनन्तर और कायोत्सर्ग के अनन्तर ऐसे दो बार अवनति हो गयीं ।

बाद में तीन आवर्त, एक शिरोनति करके 'थोस्सामि स्तव' पढ़कर अन्त में पुनः तीन आवर्त, एक शिरोनति करें। इस तरह चतुर्विंशति स्तव के आदि और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति करने से छह आवर्त और दो शिरोनति हो गयीं । ये सामायिक स्तव सम्बन्धी छह आवर्त, दो शिरोनति तथा चतुर्विंशतिस्तव संबंधी छह आवर्त, दो शिरोनति मिलकर बारह आवर्त और चार शिरोनति हो गयी।

इस तरह एक कायोत्सर्ग के करने में दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं। जुड़ी हुई अंजुलि को दाहिनी तरफ से घुमाना सो आवर्त का लक्षण है।

इतनी क्रियारूप कृतिकर्म को करके "जयति भगवान्" इत्यादि चैत्यभक्ति का पाठ पढ़ना चाहिए । ऐसे ही जो भी भक्ति जिस क्रिया में करना होती है तो यही विधि की जाती है।

आचारसार ग्रंथ के प्रमाण[१]

सामायिक शब्द का निरुक्ति अर्थ—

सं यः स्वार्थनिवृत्यात्मनेंद्रियाणाभयोऽयनम् ।
समयः सामायिकं नाम स एव समताह्वयम्।।२०।।
समस्यारागरोषस्य सर्ववस्तुष्वयोऽयनम् ।
समायः स्यात्स एवोक्तं सामायिकमिति श्रुते।।२१।।
समःस्याद्रत्यख्याप्तिहेतुवस्तुसमो वमौ।
समस्यभावः समता तोषरोषव्यपेतता।।

आचारसार ग्रंथ के प्रमाण[१]

सामायिक शब्द का निरुक्ति अर्थ—

अन्वयार्थ—(सं) सम्यक् प्रकारेण **(आत्मना)** अपनी आत्मा के साथ **(इन्द्रियाणां)** इन्द्रियों को **(स्वार्थनिवृत्य)** अपने अपने विषयों से विमुख करके **(अयः)** अय शब्द का अर्थ **(अयनं)** प्रवृति **(सः)** वह **(समयः)** समय है। **(सामायिकं)** समय का भाव सामायिक है **(सः)** वह **(एवं)** ही **(समताह्वयं)** समता है।

भावार्थ—'सम' का अर्थ इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में निवृत्त करके 'अय' अपने आप में लीन होना है। अर्थात् बाह्यमुखी प्रवृत्ति को छोड़कर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करना समय है और समय का भाव सामायिक है। सामायिक का ही नाम समता है।।२०।।

अन्वयार्थ—(सर्ववस्तुषु) सर्व वस्तुओं में **(समस्य)** सम का अर्थ **(अरागरोषस्य)** राग-द्वेष रहित **(अयः)** अय का अर्थ **(अयनं)** गमन **(समायः)** सामायिक **(स्यात्)** है। **(सः)** वह **(एव)** ही **(श्रुते)** श्रुत में **(सामायिकं)** सामायिक **(इति)** इसप्रकार **(उक्तं)** कहा है।

भावार्थ—सर्व वस्तुओं में रागद्वेष की निवृत्ति करके अपने आप में रमण करना श्रुत में सामायिक कहा गया है। 'सम' शब्द का अर्थ रागद्वेष रहित 'अय' का अर्थ अपने में लीन होना उसी का नाम समय है और समय का भाव सामायिक है।।२१।।

श्लोकार्थ—एक प्रति में यह श्लोक भी है—सर्व द्रव्य में रति अरति का भाव सम है और अपने में प्रवृत्ति का नाम "अय" है। उसी रागद्वेष रहित प्रवृति का नाम समता वा सामायिक है।

---

१. आचारसार ग्रंथ पृ. १८८ से २०३ तक।

तत्परिणत नोआगम सामायिक का अर्थ—

समतोपेतचित्तो यः स तत्परिणताह्वयः।
प्रकृतोऽत्रायमन्यासु क्रियास्वेवं निरूपयेत्।।२२।।
सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः संशुद्धकरणत्रयः।
धौतहस्तपदद्वन्द्वः परमानंदमंदिरम् ।।२३।।
चैत्यचैत्यालयादीनां स्तवनादौ कृतोद्यमः ।
भवेदनन्तसंसारसन्तानोच्छित्तये यतिः।।२४।।युग्मम्।।
यथा निश्चेतनाश्चिन्तामणिकल्पमहीरुहाः।
कृतपुण्यानुसारेण तदभीष्टफलप्रदाः।।२५।।
तथाऽर्हदादयश्चास्तरागद्वेषप्रवृत्तयः ।
भक्तभक्त्यनुसारेण स्वर्गमोक्षफलप्रदाः।।२६।।

तत्परिणत नो आगम सामायिक का अर्थ—

अन्वयार्थ—(यः) जो **(समतोपेतचित्तः)** समता से उपयुक्त चित्त है जिसका **(सः)** वह **(तत्परिणताह्वय)** तत्परिणत नाम नोआगम भाव सामायिक है। **(अत्र)** इस सामायिक में **(अयं)** यह **(प्रकृतः)** प्रकरण है वह **(अन्यासु)** अन्य **(क्रियासु)** क्रियाओं में **(एवं)** इस प्रकार **(निरूपयेत्)** निरुपण करना चाहिये ।

अन्वयार्थ—(सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः) सर्व व्यापार से रहित **(संशुद्धकरणत्रयः)** शुद्ध मन वचन काय वाला **(धौतहस्तपदद्वन्द्वः)** धोये हैं हाथ पैर जिसने **(परमानंद-मंदिरम्)** परमानन्द का मन्दिर **(यतिः)** साधु **(अनन्तसंसारसन्तानोच्छित्तये)** अनन्त संसार के संतान का छेद करने के लिये **(चैत्यचैत्यालयादीनां)** चैत्य चैत्यालय आदि के **(स्तवनादौ)** स्तवन आदि में **(कृतोद्यमः)** उद्यम करने वाला **(भवेत्)** हो।

भावार्थ—सर्व व्यापार से रहित, शुद्धमनवचनकाय से युक्त, परम आनन्द में लीन साधु, हाथ पैर धोकर अनन्त संसार की संतति का छेद करने के लिये चैत्य (जिनप्रतिमा)चैत्यालय आदि के स्तवन करने में तत्पर होवे अर्थात् परम भक्ति से जिन भगवान् की स्तुति करे ।।२३,२४।।

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे **(निश्चेतनाः)** अचेतन **(चिंतामणिकल्पमहीरुहाः)** चिंतामणि कल्पवृक्ष **(कृतपुण्यानुसारेण)** किये हुये पुण्य के अनुसार **(तदभीष्ट-फलप्रदाः)** उस अभीष्ट फल को देने वाले होते हैं **(तथा)** उसी प्रकार **(अस्तराग-प्रवृत्तयः)** नष्ट हो गई है रागद्वेष प्रवृत्ति जिसकी ऐसे **(अर्हदादयः)** अर्हद् आदि **(भक्तभक्त्यनुसारेण)** भक्त की भक्ति के अनुसार **(स्वर्गमोक्षफलप्रदाः)** स्वर्ग

गरापहारिणी मुद्रा गरुडस्य यथा तथा।
जिनस्याऽप्येनसो हंत्री दुरितारातिपातिनः।।२७।।
सुमनः संगमादंगतीहसूत्रं पवित्रताम् ।
पिष्टःप्रकृष्टमाधुर्यं प्रकृष्टेक्षुरसाद्यथा ।।२८।।
चंपापावादिनिर्वाणक्षेत्रादीनि पवित्रताम् ।
वंद्यतां च व्रजत्येव वंद्यसंगमतस्तथा ।।२९।। युग्मम् ।।
मत्वेति जिनगेहादिं त्रिःपरीत्य कृतांजुलिः ।
प्रकुर्वंस्तच्चतुर्दिक्षु सत्र्यावर्त्तां शिरोनतिम् ।।३०।।

मोक्ष के फल देने वाले होते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार अचेतन चिंतामणि और कल्पवृक्ष पुण्य के अनुसार अभीष्ट फल को देने वाले होते हैं उसी प्रकार वीतरागी अरहंत देव की प्रतिमा आदि भक्त की भक्ति के अनुसार स्वर्ग, मोक्ष के फल को देने वाले होते है।।२५,२६।।

अन्वयार्थ—(**यथा**) जैसे (**गरुडस्य**) गरुड की (**मुद्रा**) मुद्रा (**गरापहारिणी**) विष को हरने वाली होती है (**तथा**) उसीप्रकार (**दुरुतारातिपातिनः**) पाप रूपी शत्रुओं का नाशक (**जिनस्य**) जिन भगवान् की (**मुद्रा**) मुद्रा (अपि) भी (**एनसः**) पापों की (**हंत्री**) नाश करने वाली होती है।

भावार्थ—जिस प्रकार गरुड़ की मुद्रा विष को हरण करने वाली होती है उसी प्रकार जिनेन्द्रदेव की मुद्रा पाप नाशक होती है।।२७।।

अन्वयार्थ—(**यथा**) जैसे (**इह**) इस लोक में (**सुमनः**) फूल के (**संगमात्**) संगम से (**सूत्रं**) सूत्र धागा (**पवित्रतां**) पवित्रता को (**अंगति**) प्राप्त होता है (**प्रकृष्टेक्षुरसात्**) प्रकृष्ट इक्षुक रस के संयोग से (**पिष्टः**) पिष्ट (आटा) (**प्रकृष्टमाधुर्यं**) प्रकृष्ट मधुरता को प्राप्त होता है (**तथा**) उसी प्रकार (**चंपापावादिनिर्वाणक्षेत्रादीनि**) चंपापुर, पावापुर, आदि निर्वाण क्षेत्र (**वंद्यसंगमतः**) पूज्य पुरुषों के संगम से (**पवित्रतां**) पवित्रता (**च**) और (**वंद्यतां**) वंदनीयता को (**व्रजत्येव**) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—जैसे पुष्प के संबंध से सूत्र पवित्रता को प्राप्त होता है, इक्षुरस के संयोग से गेहूँ आदि का चूर्ण मधुरता को प्राप्त होता है उसीप्रकार पूज्य पुरुषों के संयोग से चंपापुर ,पावापुर , सम्मेदशिखर आदि निर्वाण क्षेत्र पवित्र और वंदनीयता को प्राप्त हुये हैं ।।२८,२९।।

अन्वयार्थ—(**इति**) ऐसा (**मत्वा**) मानकर (**जिनगेहादिं**) जिनमंदिर आदि को (**त्रिःपरीत्य**) तीन प्रदक्षिणा देकर (**कृतांजुलिः**) की है अंजुलि जिसने ऐसा

घोरसंसारगंभीरवारिराशौ निमज्जताम् ।
दत्तहस्तावलंबस्य जिनस्यार्चार्थमाविशेत् ।।३१ युग्मम् ।।
जिनेशतारकाधीशपादसंपादितोत्सवः।
श्रीलीलामंदिरस्वीयलोचनेन्दीवरः पुनः।।३२।।
ईर्याऽऽगः शुद्धयै व्यत्सर्गं कृत्वाऽऽसीनोऽनुकंपया।
आलोच्य समतांवर्यां कुर्यादात्मेच्छयाऽन्यदा।।३३।।युग्मं।।
लक्षणं समतादीनां पुरोक्तं किन्तु वर्ण्यते।
व्युत्सर्गावसरोच्छ्वाससंख्यानामादि साम्प्रतम्।।३४।।

(**तच्चतुर्दिक्षु**) उस जिनमंदिर की चारों दिशाओं में (**सत्र्यावर्तां**)तीन आवर्त्त सहित (**शिरोनतिं**) शिरोनति को (**प्रकुर्वन्**) करता हुआ (**घोरसंसारगंभीरवारिराशौ**) घोर संसाररूपी गंभीर समुद्र में (**निमज्जतां**) डूबे हुए प्राणियों को (**दत्तहस्तावलंबस्य**) दिया है हस्तावलंबन जिसने ऐसे (**जिनस्य**) जिनेन्द्र भगवान् की (**अर्चार्थं**) पूजा करने के लिये (**अविशेत्**) प्रवेश करे ।

भावार्थ—ऐसा जान करके जिनमंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर,हाथ जोड़कर, चारो दिशाओं में तीन आवर्त सहित नमस्कार करके घोर संसाररूपी समुद्र में डूबे हुये संसारी प्राणियों को हस्तावलंबन देने वाले जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने के लिए जिनमंदिर में प्रवेश करे ।।३०,३१।।

अन्वयार्थ—(**जिनेशतारकाधीशपादसंपादितोत्सवः**) जिनेन्द्र भगवान रूपी चंद्रमा के पाद (किरण और चरण) से संपादित है उत्सव जिसके (**श्री लीलामंदिर-स्वीयलोचनेन्दीवरः**) लक्ष्मी की लीला का मंदिर ही है निज लोचनरूपी कमल जिसके ऐसा संयमी (**पुनः**) फिर (**ईर्यागः**) ईर्यापथ के पापों की (**शुद्धयैः**) शुद्धि के लिये (**व्युत्सर्गं**) कायोत्सर्ग (**कृत्वा**) करके (**आसीनः**) बैठा हुआ (**अनुकम्पया**) अनुकम्पा से (**आलोच्य**) आलोचना करके (**अन्यदा**) अन्यदा (**आत्मोच्छया**) अपनी इच्छा से (**वर्यां**) श्रेष्ठ (**समतां**) सामायिक को (**कर्यात्**) करे ।

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवान् रूपी चंद्रमा के पाद (किरण चरण) से आनन्दित है लक्ष्मी के निवासभूत नेत्ररूपी कमल जिसके ऐसा संयमी प्रथम मंदिर में प्रवेश करके ईर्यापथ शुद्धि के लिये "पडिकम्मामि भंते" इत्यादि प्रतिक्रमण पढ़ कर कायोत्सर्ग करे । तदनन्तर बैठकर जीवघात से भयभीत होता हुआ अनुकम्पा से (इच्छामि भन्ते) इत्यादि आलोचना पढ़ कर अपनी इच्छा से उत्तम समता को स्वीकार करे ।।३२-३३।।

अन्वयार्थ— (**पुरा**) पूर्व में (**समतादीनां**) समतादि का (**लक्षणं**) लक्षण

क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहम्।
विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम्।।३५।।
कृत्वा करसरोजातमुकुलालंकृतं निजम् ।
भाललीलासरः कुर्यात् त्र्यावर्त्तां शिरसो नतिं।।३६।।
आद्यस्य दंडकस्यादौ मंगलादेरयं क्रमः ।
तदन्तेऽप्यंगव्युत्सर्गः कार्योतस्तदनन्तरम् ।।३७।।
कुर्यात्तथैव ''थोस्सामी'' त्याद्यार्याद्यंतयोरपि ।
इत्यस्मिन् द्वादशावर्त्ताः शिरोनतिचतुष्टयम् ।।३८।।युग्मं।।

(उक्तं) कहा है **(किन्तु)** परन्तु **(साम्प्रतं)** इस समय **(व्युत्सर्गावसरोच्छ्वास-संख्यानामादि)** उत्सर्ग काल के उच्छ्वासों की संख्याओं का **(वर्ण्यते)** वर्णन किया जाता है।

भावार्थ — यद्यपि प्रथम अधिकार के छत्तीस श्लोक के द्वारा सामायिक लक्षण कहा है तथापि इस समय कायोत्सर्ग के काल के श्वासोच्छ्वास की संख्याओं का वर्णन करते हैं।।३४।।

अन्वयार्थ —(अस्यां) इस **(क्रियायां)** क्रिया में **(अस्याः)** इस **(भक्तेः)** भक्ति का **(व्यत्सर्गं)** कायोत्सर्ग **(अहं)** मैं **(करोमि)** करता हूं **(इति)** इस प्रकार **(विज्ञाय)** विज्ञापन करके **(समुत्थाय)** उठकर **(गुरुस्तवनपूर्वकम्)** गुरु स्तवन पूर्वक **(निजं)** अपने **(करसरोजातमुकुलालंकृतं)** हस्त कमल की कुड्मलाकृति को **(भाललीलासरः)** ललाट पर **(कृत्वा)** करके **(त्र्यावर्त्तां)** तीन आवर्त और **(शिरसः)** मस्तक से **(नतिं)** नमस्कार को **(कुर्यात्)** करे ।

भावार्थ — मैं इस क्रिया में इस भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूं। जैसे — पौर्वाह्निक देववंदना में ''चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं'' इस प्रकार विज्ञापन करे। तदनंतर उठकर ''णमो अरिहंताणं'' इत्यादि पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर अपने कर कमल की अंजुलि को मस्तक पर रखकर तीन आवर्त सहित नमस्कार करे ।।३५-३६।।

अन्वयार्थ —(आद्यस्य) आदि **(दंडकस्य)** दंडक के **(आदौ)** आदि में **(मंगलादेः)** मंगलादि का **(अयं)** यह **(क्रमः)** क्रम है । **(तदन्ते)** चत्तारिमंगलं आदि दंडक के अन्त में **(अपि)** भी **(अंगव्युत्सर्गः)** कायोत्सर्ग **(कार्यः)** करना चाहिये। **(अतः)** इसलिए **(तदनन्तरं)** इसके बाद **(तथैव)** उसी प्रकार **(थोस्सामि)** थोस्सामि **(इत्यादि)** इत्यादि पाठ **(कुर्यात्)** करे **(इति)** इस प्रकार **(अस्मिन्)** कायोत्सर्ग में **(आर्याद्यन्तयोः)** आर्या छंद — थोस्सामि स्तवन के आदि और अन्त में

ग्रंथारंभे समाप्तौ च स्वाध्याये स्तवनादिषु ।
सप्तविंशतिरुच्छ्वासा व्युत्सर्गे दुर्मनस्यपि।।३९।।
व्रतेत्वन्यनमस्याऽतिचारशुद्धेर्दिनस्य च।
स्यान्प्रतिक्रमणोऽष्टाग्रशतं रात्र्यास्तु तद्दलम्।।४०।।
पाक्षिके त्रिशतं चातुर्मासिके स्याच्चतुः शतम्।
शतानिपंच संवत्सरस्य षट्सु क्रियान्तगे।।४१।।

(अपि) भी **(द्वादशावर्त्ताः)** बारह आवर्त **(शिरोनतिचतुष्टयं)** चार शिरोनति **(कुर्यात्)** करना चाहिये ।

भावार्थ — एक भक्ति के दंडक की आदि में मंगलादि का यही क्रम है अर्थात् भक्तिपूर्वक क्रिया और भक्ति का विज्ञापन करे । एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके दंडक पढ़े । दंडक के बाद एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके कायोत्सर्ग करे । तदनन्तर एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करे । इस प्रकार एक कायोत्सर्ग में चार शिरोनति और बारह आवर्त्त करना चाहिये ।।३७-३८।।

अन्वयार्थ —(स्वाध्याये) स्वाध्याय में **(च)** और **(स्तवनादिषु)** स्तवन आदि में **(दुर्मनसि अपि)** विकृति परिणाम के होने पर भी **(व्युत्सर्गे)** कायोत्सर्ग में **(सप्तविंशतिः)** सत्ताईस **(उच्छ्वासः)** उच्छ्वास हैं।

भावार्थ — ग्रन्थ के आरम्भ, समाप्ति, स्वाध्याय, पंचपरमेष्ठी की वन्दना और दुर्भावना के कायोत्सर्ग में सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिए ।।३९।।

अन्वयार्थ — (व्रतेषु) व्रतों में **(अन्यतमस्य)** किसी भी **(अतिचारशुद्धेः)** अतिचार की शुद्धि के लिये **(च)** और **(दिनस्य)** दैवसिक **(प्रतिक्रमणे)** प्रतिक्रमण में **(अष्टाग्रशतं)** एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास **(तु)** और **(रात्र्याः)** रात्रि के प्रतिक्रमण में **(तद्दलं)** उससे आधा अर्थात् चौवन श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग **(स्यात्)** होता है।

भावार्थ — व्रतों में अतिचार होने पर दैवसिक प्रतिक्रमण में १०८ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा रात्रिक प्रतिक्रमण में ५४ श्वासोच्छ्वासों में कायोत्सर्ग करना चाहिये।।४०।।

अन्वयार्थ —(पाक्षिके) पाक्षिक प्रतिक्रमण में **(त्रिशत)** तीन सौ **(चातुर्मासिके)** चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में **(चतुःशतं)** चार सौ **(संवत्सरस्य)** वार्षिक प्रतिक्रमण में **(पंच)** पांच **(शतानि)** सौ **(षट्सु)** छह प्रकार के प्रतिक्रमणों में **(क्रियांतगे)** प्रतिक्रमण भक्ति के अन्त में **(जिनसाधुनिषद्यानां)** जिनेन्द्र भगवान की साधुओं की

पंचविंशतिरुच्छ्वासा गोचरेर्यातिचारयोः।
जिनसाधुनिषद्यानां विण्मूत्रोत्सर्जनैनसि।।४२।।
देवतास्तवने भक्तिचैत्यपंचगुरूभयोः।
चतुर्दश्यां तयोर्मध्ये श्रुतभक्तिर्विधीयते।।४३।।
त्रिशुद्धौ द्वादशावर्त्ते द्विनिषण्णे चतुर्नतौ।
बद्धांजुलौ त्यजेद्दोषान् कृतिकर्मव्रजेऽप्यमून्।।८७।।

निषद्या के (**गोचरेर्यातिचारयोः**) गमनागमन के अतिचार के प्रतिक्रमण में (**विण्मूत्रोत्सर्जनैनसि**) मल मूत्र के विसर्जन के पाप में (**पंचविंशति**) पच्चीस (**उच्छ्वासा**) श्वासोच्छ्वास होते हैं।

भावार्थ— पाक्षिक प्रतिक्रमण में तीन सौ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में चार सौ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिए। वार्षिक प्रतिक्रमण में पांच सौ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। छह प्रकार प्रतिक्रमणभक्ति के अन्त में पच्चीस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। आहार करने के बाद पच्चीस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। जिन साधुओं की निषद्या, तीर्थयात्रादि के गमनागमन और मलमूत्र के विसर्जन में भी पच्चीस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिये। ।।४१,४२।।

अन्वयार्थ— (**देवतास्तवने**) देवताओं के स्तवन में (**चैत्यपंचगुरूभयोः**) चैत्य और पंचगुरु की (**भक्ति**) भक्ति (**चतुर्दश्यां**) चतुर्दशी के दिन (**तयोः**) चैत्य,पंचगुरुभक्ति के (**मध्ये**) मध्य में (**श्रुतभक्तिः**) श्रुतभक्ति (**विधीयते**) की जाती है।

भावार्थ— त्रिकाल देववन्दना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति पढ़नी चाहिये। चतुर्दशी के दिन चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिये।।४३।।

अन्वयार्थ— (**त्रिशुद्धौ**) मन, वचन, काय की शुद्धि (**द्वादशावर्त्ते**) बारह आवर्त्त (**द्विनिषण्णे**) दो निषद्या (**चतुर्नतौ**) चार शिरोनति (**बद्धांजुलौ**) बद्धांजुलि स्वरूप (**कृतिकर्मव्रजे**) कृतिकर्म के समूह में (**अपि**) भी (**अमून्**) इन (**दोषान्**) दोषों को (**त्यजेत्**) छोड़े।

भावार्थ— मन, वचन, काय की शुद्धि ,बारह आवर्त्त, द्विनिषद्या, चार शिरोनति पूर्वक अंजुलि जोड़कर कृतिकर्म करना चाहिये। इस कृतिकर्म में भी बत्तीस दोष होते हैं उनको छोड़ना चाहिये।।८७।।

गोम्मटसार-जीवकाण्ड के प्रमाण

कृतेः क्रियायाः कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म। तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादिनवदेवतावन्दनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतुःशिरो द्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति[1]।

चारित्रसार के प्रमाण[2]

क्रियां कुर्वाणो वीर्योपगूहनमकृत्वा शक्त्यनुरूपतः स्थितेनाशक्तः सन् पर्यंकासनेन वा त्रिकरणशुद्धया संपुटीकृतकरः क्रियाविज्ञापनपूर्वकं सामायिकदंडकमुच्चारयेत्, तदावर्त्तत्रयं यथाजातं शिरोन्नमनमेकं भवति, अनेन प्रकारेण सामायिकदंडकसमाप्तावपि प्रवर्त्य यथोक्तकालं जिनगुणानुस्मरणसहितं कायव्युत्सर्गं कृत्वा द्वितीयदण्डकस्यादावन्ते च तथैव प्रवर्त्तनं, एवमेकैकस्य कायोत्सर्गस्य द्वादाशावर्त्ताश्चत्वारि शिरोवनमनानि भवन्ति। अथवैकस्मिन्

गोम्मटसार-जीवकाण्ड के प्रमाण

जिसमें कृति अर्थात् क्रियाकर्म का विधान कहा जाता हैं, वह क्रियाकर्म है। उसमें अरहन्त, सिद्ध-आचार्य, बहुश्रुत (उपाध्याय), साधु आदि नौ देवताओं की वन्दना के निमित्त आत्माधीनता (अपने अधीन होना), तीन बार प्रदक्षिणा, तीन बार नमस्कार, चार बार सिर नमाना, बारह आवर्त आदि रूप नित्य-नैमित्तिक क्रिया-विधान का वर्णन होता है।

चारित्रसार के प्रमाण

क्रिया करते समय अपनी शक्ति को कभी नहीं छिपाना चाहिये, अपनी शक्ति के अनुसार खड़े होकर कायोत्सर्ग करना चाहिये। यदि खड़े होने की सामर्थ्य न हो तो पर्यंकासन से बैठकर करना चाहिये। मन, वचन,काय तीनों की शुद्धतापूर्वक दोनों हाथों का संपुट बांधकर करने योग्य क्रियाओं की प्रतिज्ञा कर सामायिक दंडक के (सामायिक पाठ का) उच्चारण करना चाहिये। उस समय तीन आवर्त, यथाजात अवस्था धारण कर एक शिरोनति करना चाहिये। इसी प्रकार सामायिक दंडक के समाप्त होने पर भी सब क्रियाएं करनी चाहिये। इस तरह शास्त्रों में लिखे हुए समय तक भगवान् जिनेन्द्रदेव के गुणों का स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिये। इसी प्रकार दूसरे दंडक के प्रारंभ और अंत में करना चाहिये। इस प्रकार एक-एक कायोत्सर्ग के बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं

---

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाग-२, पृ. ६१४-६१५। २. चारित्रसार पृ. १४३ से १४७ तक।

प्रदक्षिणीकरणे चैत्यादीनामभिमुखीभूतस्याऽऽवर्त्तत्रयैकावनमने कृते चतसृष्वपि दिक्षु द्वादशावर्त्ताश्चतस्त्रः शिरोवनतयो भवन्ति । आवर्त्तानां शिरःप्रणतीनामुक्तप्रमाणादाधिक्यमिति न दोषाय। उक्तं च —

दुऊणदं जहाजादं वारसावत्तमेव च ।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे।।

परायत्तस्य सतः क्रियां कुर्वाणस्य कर्मक्षयो न घटते ,तस्मादात्माधीनः सच्चैत्यादीन् प्रतिवन्दनार्थं गत्वा धौतपादस्त्रिप्रदक्षिणीकृत्येर्यापथकायोत्सर्गं कृत्वा प्रथममुपविश्याऽऽलोच्य चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय जिनेन्द्रचन्द्रदर्शनमात्रान्निजनयनचन्द्रकांतोपलविगलदानन्दाश्रुजलधारापूरपरिप्लावितपक्ष्मपुटोऽनादिभवदुर्लभभगवदर्हत्परमेश्वरपरमभट्टारकप्रतिबिंबदर्शनजनितहर्षोत्कर्षपुलकिततनुरतिभक्तिभरावनतमस्तकन्यस्तहस्तकुशेशयकुड्मलो दण्डकद्वयस्यादावन्ते च प्राक्तनक्रमेण प्रवृत्त्य चैत्यस्तवनेन त्रिःपरीत्य द्वितीयवारे-

---

अथवा एक-एक प्रदक्षिणा में (दिशा बदलते समय) उस दिशा संबंधी चैत्य-चैत्यालय के सन्मुख तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये । इस प्रकार चारों दिशाओं में बारह आवर्त और चार शिरोनति करनी चाहिये । आवर्त और शिरोनति का जो प्रमाण ऊपर लिखा है उससे अधिक करना कुछ दोष नहीं गिना जाता । कहा भी है—दुऊणदं इत्यादि ।

अर्थात्—दो आसनों से यथाजात अवस्था धारण कर बारह आवर्त, चार शिरोनति और मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक काल का नियम कर प्रभु की वंदना करनी चाहिये।

जो पराधीन होकर क्रियाएं करता है उसके कर्मों का नाश कभी नहीं होता इसलिये केवल आत्मा के आधीन होकर जिनबिंब आदिकों की प्रतिवंदना के लिये जाना चाहिये । पैर धोकर, तीन प्रदक्षिणा देकर ईर्यापथ कायोत्सर्ग करना चाहिये । और फिर बैठकर आलोचना करनी चाहिये । तदनन्तर "मैं चैत्यभक्ति कायोत्सर्ग करता हूँ" इस प्रकार प्रतिज्ञा कर तथा खड़े होकर श्री जिनेन्द्रदेव रूपी चंद्रमा के दर्शन करने मात्र से अपने नेत्ररूपी चंद्रकांतमणि से निकलते हुए आनंदाश्रु की जलधारा के पूर से जिसके नेत्रों के दोनों पलक भीग गये हैं, अनादि संसार में दुर्लभ ऐसे भगवान अरहंत परमेश्वर परम भट्टारक के प्रतिबिंब के दर्शन करने से उत्पन्न हुए उत्कृष्ट हर्ष से जिसका शरीर पुलकित हो गया है तथा अत्यन्त भक्ति के भार से नम्रीभूत मस्तक पर जिसने अपने दोनों हाथरूपी कमलों का कुड्मल (जुड़े हुए हाथ) रख लिया है ऐसे उस कायोत्सर्ग करने वाले को दोनों दंडकों के आदि-अंत में पहिले कहे हुए क्रम से सब क्रियाएं करनी चाहिये । अर्थात् तीन-तीन आवर्त और एक-एक

ऽप्युपविश्याऽऽलोच्य पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय पंचपरमेष्ठिनः स्तुत्वा तृतीयबारेऽप्युपविश्याऽऽलोचनीयः । एवमात्माधीनता, प्रदक्षिणीकरणं, त्रिवारं, निष्पन्नत्रयं, चतुःशिरो, द्वादशावर्त्तकमिति क्रियाकर्म षड्विधं भवति । तत्र चतुःशिरो दंडकद्वयान्ते प्रणतौ प्रदक्षिणीकरणे च दिक्चतुष्टयावनतौ चतुःशिरो भवति अथवा शिरःशब्दः प्रधानवाची वन्दनाप्रधानभूता अर्हत्सिद्धसाधुधर्मा इति। उक्तं च राद्धान्तसूत्रे । ''आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं वारसावत्तं चेति।'' एवं देवतास्तवनक्रियायां चैत्यभक्ति-पंचगुरुभक्तिं च कुर्यात्।

शिरोनति करनी चाहिये । फिर जिनबिंब की स्तुति करनी चाहिये । दूसरी बार भी बैठकर आलोचना करनी चाहिये तथा "मैं पंचगुरुभक्ति कायोत्सर्ग करता हूँ" ऐसी प्रतिज्ञा कर खड़े होकर पांचों परमेष्ठियों की स्तुति करनी चाहिये । तीसरी बार भी बैठकर आलोचना करनी चाहिये । इस प्रकार आत्मा की स्वाधीनता, तीन प्रदक्षिणा करना, तीन बार बैठना, तीन शुद्धि, चार शिरोनति और बारह आवर्त इस प्रकार छह प्रकार का क्रियाकर्म कहलाता है। उसमें भी चार शिरोनति दोनों दंडकों के आदि-अंत में, प्रणाम करते समय, प्रदक्षिणा करते समय चारों दिशाओं में नमस्कार करते समय, इस तरह चार-चार करनी चाहिये । अथवा शिर शब्द का प्रधान है अरहंत, सिद्ध,साधु और धर्म । वंदना के योग्य ये चार ही प्रधान हैं। इन छह कर्मों के लिये राद्धांत सूत्र में भी लिखा है—"आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं वारसावत्तं चेति" अर्थात् आत्मा की स्वाधीनता (पदाहीणं) प्रदक्षिणा करना, (तिखुत्तं) त्रिबारशुद्धि, (तिऊणदं) तीन बार निषद्या या बैठना, (चदुस्सिरं) चार शिरोनति, (वरसावत्तं) बारह आवर्त-ये छह कर्म हैं। इस प्रकार देवता की स्तवन क्रिया करते समय चैत्यभक्ति और पंचगुरु की भक्ति करनी चाहिये।

अनगारधर्मामृत के प्रमाण

सामायिकादित्रयस्य व्यवहारानुसारेण प्रयोगविधिं दर्शयति[1] —

सामायिकं णमो अरहंताणमिति प्रभृत्यथ स्तवनम् ।
थोस्सामीत्यादि जयति भगवानित्यादिवन्दनां युंज्यात् ।।५६।।

युंज्यात् संयतो देशसंयतो वा प्रयोजयेत् । किं तत् ? **सामायिकं** सामायिकदण्डकम्। कीदृशम् ? **णमो अरहंताणं इति प्रभृति** । तथानन्तरं युञ्ज्यात् । किं तत् ? स्तवनं चतुर्विंशतिस्तवनं स्तवदण्डकम् । कीदृशम् ? **थोस्सामि इत्यादि**। अथ अनतंरं युञ्ज्यात्। काम् ? **जयति भगवानित्यादिवन्दनाम्** । अत्रैक आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः । तेन अर्हत्सिद्धादिवन्दना गृह्यते ।

साधून् प्रभातिकदेववंदनां इति प्रोत्साहयन्नाह —

योगिध्यानैकगम्यः परमविशददृग्विश्वरूपः स तच्च,
स्वान्तस्थेम्नैव साध्यं तदमलमतयस्तत्पथध्यानबीजम्।
चित्तस्थैर्यं विधातुं तदनवधिगुणग्रामगाढानुरागं,
तत्पूजाकर्म कर्मच्छिदुरमिति यथासूत्रमासूत्रयन्तु।।१२।।

अनगारधर्मामृत के प्रमाण

संयमी साधुओं को तथा देश संयमी श्रावकों को भी णमो अरहंताणं आदि सामायिक दण्डक में बताये हुये पाठ के अनुसार सामायिक, और थोस्सामि इत्यादि पाठ के अनुसार चतुर्विंशतिस्तव, तथा 'जयति भगवान्' इत्यादि उल्लेख के अनुसार वन्दना करनी चाहिये ।

इस श्लोक में एक आदि शब्द का लुप्त निर्देश है। अतएव इस वन्दना के प्रकरण में अरहंत वन्दना, सिद्ध वन्दना आदि का भी संग्रह समझ लेना चाहिये।[2]

प्रातःकालीन देववन्दना करने के लिये साधुओं को प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं —

जिसका ध्यान योगिजन किया करते हैं वह परमात्मा केवलज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञान सर्वोत्कृष्ट पदको प्राप्त है — उससे अधिक ज्ञान कहीं पर भी और किसी भी जीव के नहीं पाया जाता । तथा वह ज्ञान विशद — स्पष्ट अथवा अव्यवधान — अक्रमवर्ती है, अर्थात् युगपत् समस्त पदार्थों को विषय करता है, और पर इन्द्रिय अथवा मन की अपेक्षा नहीं रखता । इस ज्ञान के द्वारा जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ-लोक तथा अलोक और

१. अनगार धर्मामृत मूल, अध्याय ८, पृ. ५७७ एवं ६३५ से ६४६ तक। २. अनगार धर्मामृत हिन्दी, अध्याय ८, पृ. ७७४ एवं ८५६ से ८७२ तक।

सः-

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ।।
असहायणाणदंसणसहिओ इदिकेवली हु जोगेण।
जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो।।

इत्येवंविधे परमागमे प्रसिद्धः परमविशददृग्विश्वरूपो भवति । कीदृशः ? **योगिध्यानैकगम्यः**। योगो यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिलक्षणाष्टङ्गरूप एषामस्तीति योगिनः । तेषां ध्यानं, ज्ञानमेव स्थिरीभूतं ध्यानमित्युच्यते बुधैरित्येवंलक्षणं, योगिध्यानम् । योगिध्याननैकेनोत्कृष्टेन, ध्यानमेव स्थिरीभूतं समाधिरिति कथ्यते, इत्येवंलक्षणेन गम्यते उपलभ्यत इति योगिध्यानैकगम्यः। एकत्ववितर्कावीचारशुक्लध्यानसंवेद्य इत्यर्थः। परमेत्यादि । परमा प्रकर्षप्राप्ता विशदा अव्यवधानेन विशेधवत्तया वा प्रतिभासमाना दृक् परमविशददृक् केवलज्ञानम् । तत्र विश्वस्य लोकालोकस्य रूपाण्याकारा यस्यासौ परमविशददृग्विश्वरूपः । **तच्च** तत्पुनर्योगिध्यानं भवति । कीदृशम् । साध्यं निर्वर्तयितुं शक्यम् । केन ? स्वांतस्थेम्नैव मनःस्थैर्येणैव, न मनश्चपलत्वेन । स्थिरस्य भावः स्थेमा। स्वान्तस्य स्थेमा स्वान्तस्थेमा । तेन स्वान्तस्थेम्ना । यथाह —

ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो हेतुरेतच्चतुष्टयम् ।
गुरूपदेशः श्रद्धानं सदाभ्यासः स्थिरं मनः ।।

त्रिकालवर्त्ती उनके समस्त आकार प्रतिभासित हुआ करते हैं। इस ज्ञान के धारक अरिहंत भगवान् का स्वरूप परमागम में प्रसिद्ध है।

जिन्होंने केवलज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से अज्ञानभाव को सर्वथा नष्ट कर दिया है, और नव केवललब्धियों के प्रकट होने से जिन्होंने परमात्मा यह संज्ञा प्राप्त करली है, उनको अनादिनिधन आर्ष आगम में असहायज्ञानदर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोगी जिन कहा गया है।

इस प्रकार के परमात्मा के स्वरूप का संवेदन केवल योगियों को ध्यान के द्वारा ही हो सकता है। किंतु इस प्रकार के ध्यान की प्राप्ति योगियों को मन की स्थिरता से ही हुआ करती है। जिनका मन चंचल है उनको इस ध्यान की सिद्धि नहीं होती । जैसा कि कहा भी है कि —

अर्थात् ध्यान की सिद्धि के प्रधानतया चार कारण हैं — गुरुओं का उपदेश,श्रद्धान, निरंतर अभ्यास, और मन की स्थिरता ।

अपि च —

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धरयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्पुनः।।

यत एवं **तत्** तस्मात्कारणादऽ**मलमतयो**ऽकलुषबुद्धयः साधव **आसूत्रयन्तु** रचयन्तु। किं तत् ? **तत्पूजाकर्म** जिनेंद्रवंदनाम् । तस्य जिनेन्द्रस्य परमात्मापराभिधानस्य पूजाकर्म विनयक्रिया तत्पूजाकर्म । कथम् ? **यथासूत्रं** परमागमानतिक्रमेण । कथं कृत्त्वा ? **कर्मच्छिदुरमिति** कर्मणां ज्ञानावरणादीनां मनोवाक्कायक्रियाणां वा छिदुरं छेदनशील-मेकदेशेन तदपनेतृत्वादिति हेतोः । किंविशिष्टम् ? **तदनवधिगुणग्रामगाढानुरागम्** ।

और भी कहा है कि —

अविक्षिप्त — अचपल — स्थिर मन को तत्त्व और उसके विरुद्ध विक्षिप्त — चंचल मन को भ्रान्ति माना है। अत एव मुमुक्षुओं को चंचल मन का आश्रय छोड़ कर स्थिर मन का ही आश्रय लेना चाहिये ।

चित्त की स्थिरता जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-वन्दना करने से हुआ करती है। अतएव कालुष्य रहित निर्मल बुद्धि के धारक साधुओं को उचित है कि उस परमात्मा की प्राप्ति का उपायभूत धर्म्यध्यान या शुक्लध्यान रूप उपयोग का भी बीज — कारण चित्त की स्थिरता को ही समझकर उसको सिद्ध करने के लिये परमागम में कहे अनुसार परमात्मा — श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-विनय-कर्म उसके अनन्तानन्त गुणों के पिण्ड में गाढ़ अनुराग-भक्ति अथवा श्रद्धा रखते हुए अवश्य करें । क्योंकि यह पूजा ज्ञानावरणादि कर्मों को अथवा कर्मों के आने के द्वाररूप मन वचन काय के व्यापार को नष्ट करने वाली है।

भावार्थ — यहाँ पर पूजा शब्द से भाव पूजा का ही ग्रहण करना चाहिये । भाव पूजा का लक्षण इस प्रकार बताया है कि —

अर्थात् — अरिहंत भगवान् के व्यापक और विशुद्ध गुणों में अनुराग भाव रखकर उनका चिन्तवन करना इसको भावपूजा कहते हैं। अत एव इस पूजा के करने वाले के जिनेन्द्र भगवान के अनन्तानन्त ज्ञानादि गुणों में भक्ति या श्रद्धा दृढ़ हुआ करती है, और मनवचन काय की क्रियाओं का सावद्य-रूप से निरोध हो जाने के कारण संवर तथा ज्ञानावरणादि कर्मों की एकदेश निर्जरा भी हुआ करती है। तथा चित्त में स्थिरता भी प्राप्त हुआ करती है। जिससे कि योगियों को उस उत्कृष्ट ध्यान की सिद्धि हुआ करती है कि जिसके बल से वे उस परमात्म का स्वयं संवेदन कर सकते हैं।

तस्य जिनेंद्रस्यानवधयोऽनन्ता गुणा ज्ञानादयस्तदनवधिगुणाः। तेषां ग्रामः संघातः । तत्र गाढो दृढोनुरागो भक्तिः श्रद्धानं यत्र तत्पूजाकर्मणि तत्तथोक्तम् । एतेन भावपूजां लक्षयति। तथा चोक्तम् -

व्यापकानां विशुद्धानां जैनानामनुरागतः ।
गुणानां यदनुध्यानं भावपूजेयमुच्यते ।।

किं कर्तुम् ? **विधातुं** विधास्यामीति कर्तुम् । किं तत् ? **चित्तस्थैर्यम्** । कीदृशम् ? **तत्पथध्यानबीजं** परमात्मप्राप्त्युपायभूतधर्म्यशुक्ललक्षणप्रणिधानकारणभूतम् । तस्य परमात्मनः पन्थाः प्राप्त्युपायस्तत्पथः । तत्पथश्च स ध्यानं च तत् तत्पथध्यानम् । तस्य बीजं कारणम् ।।

त्रैकालिकदेववन्दनायाः प्रयोगविधिमाह —

त्रिसन्ध्यं वंदने युंज्याच्चैत्यपञ्चगुरुस्तुती ।
प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धये ।।१३।।

युंज्याद् योजयेद्वन्दारुः । के ? **चैत्यपञ्चगुरुस्तुती** चैत्यवन्दनां पञ्चगुरुवन्दनां

यहाँ पर उत्कृष्ट ध्यान शब्द से एकत्ववितर्क अवीचार नाम का शुक्लध्यान समझना चाहिये । क्योंकि परमात्मा के उक्त स्वरूप का स्वसंवेदन उसी के द्वारा होता है।

योगियों को चित्त की स्थिरता से सिद्ध होने वाले योग के आठ अंग बताये हैं।— यम, नियम, आसन,प्राणायाम, प्रत्याहार,धारणा ,ध्यान और समाधि । इनमें से अपने विषय पर स्थिर हो जाने वाले ज्ञान को ही ध्यान कहते हैं। और जब वह ध्यान भी स्थिरीभूत हो जाता है तब उसी को समाधि कहते हैं। इस समाधि या उत्कृष्ट ध्यान अथवा प्रकृत में एकत्ववितर्क की सिद्धि का कारण मन की स्थिरता और उसका भी कारण परमात्मा की पूजा-वन्दना को जानकर योगियों को आगम के अनुसार अवश्य ही प्रातःकालीन देववंदना करने में प्रवृत्त होना चाहिये ।

त्रैकालिक देववन्दना किसप्रकार करनी चाहिये सो उसकी विधि बताते हैं —

वन्दना करने वाले साधुओं को तीनों सन्ध्याओं के समय में जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना करने में चैत्यवन्दना और पंचगुरुवन्दना करनी चाहिये । और जब दोषों की विशुद्धि करनी हो - वन्दना संबंधी अतीचारों या रागादि भावों का उच्छेदन करना हो तब बृहद्भक्तियों के अन्त में समाधि भक्ति करनी चाहिये । जैसा कि कहा भी है कि- "ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिकाः" अर्थात् न्यूनाधिकता के दोष की निवृति के लिये सर्वत्र समाधिभक्ति की जाती है।

चेत्यर्थः । क्व ? वन्दने जिनदेववन्दनायाम् । कथम् ? **त्रिसन्ध्यं** सन्ध्यात्रयेपि । तथा युंज्यात् । काम् ? **प्रियभक्तिं** समाधिभक्तिम् । क्व ? अन्ते वन्दनापर्यन्ते । कासु ? बृहद्भक्तिषु । बृहत्यो भक्त्युच्छ्वासदण्डकपाठबहुत्वान्महत्यो भक्तयो बृहद्भक्त्यस्तासु। कस्यै ? दोषविशुद्धये । दोषा वंदनातीचारा रागादयो वा । तेषां विशुद्धिर्व्यपोहो दोषविशुद्धिस्तस्यै । उक्तं च —

''ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिकाः।''

यत्पुनवृद्धपरम्पराव्यवहारोपलम्भात् सिद्धचैत्यपञ्चगुरुशान्तिभक्तिभिर्यथावसरं भगवन्तं वन्दमानाः सुविहिताचारा अपि दृश्यन्ते तत्केवलं भक्तिपिशाचिदुर्ललितमिव मन्यामहे सूत्रातिवर्तनात् । सूत्रे हि पूजाभिषेकमङ्गल एव तच्चतुष्टयमिष्टम् ।

चैत्यपञ्चगुरुस्तुत्या नित्या सन्ध्यासु वन्दना ।
सिद्धभक्त्यादिशान्त्यन्ता पूजाभिषवमङ्गले ।।

अपि च —

[1]जिणदेववंदणाए चेदियभत्तीय पंचगुरुभत्ती ।

आचार शास्त्र में कहे अनुसार ही अच्छी तरह से क्रिया करने वाले भी कितने ही ऐसे देखने में आते हैं कि जो केवल वृद्धों की परम्परा से चले आये व्यवहार के ही वशीभूत होकर जिन भगवान् की नित्य वन्दना भी सिद्धभक्ति ,चैत्यभक्ति, पञ्चगुरुभक्ति और शांतिभक्ति इन चार भक्तियों के द्वारा ही किया करते हैं। किन्तु उनका यह व्यवहार हमारी समझ से केवल भक्ति का अतिरेक ही समझना चाहिये । क्योंकि ऐसा करने में आगम की आज्ञा का अतिक्रमण होता है। आगम में पूजा और अभिषेक मङ्गल के अवसर पर ही इन चार भक्तियों के करने का विधान है। जिनवन्दना के समय केवल चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति ही की जाती है। यथा —

तीनों सन्ध्याओं के समय जो जिनदेव की नित्य वंदना की जाती है वह चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्तिपूर्वक हुआ करती है। और पूजा के समय अथवा अभिषेक वन्दना के समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति ये चार भक्ति की जाती हैं। और भी कहा हैं। कि —

अर्थात् - जिनदेव की वन्दना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिये ।

अर्थात् - अभिषेक वन्दना सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति के द्वारा की जाती है।

अतएव यह बात सिद्ध है कि तीनों सन्ध्याओं के समय नित्यवन्दना चैत्यभक्ति

---

१. जिनदेववन्दनायां चैत्यभक्तिश्च पंचगुरुभक्तिः।

अपि च —

[2]अहिसेयवंदणासिद्धचेदियपंचगुरुसंतिभत्तीहिं ।।

कृतिकर्मणः षड्विधत्वमन्वाचष्टे —

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम्।।१४।।

इष्टं पूर्वाचार्यैः । किं तत् ? **कृतिकर्म** । कतिधा ? **षोढा** षट्प्रकारम्। कथम् ? एवमऽनेन स्वाधीनतादिप्रकारेण तावत्कृतिकर्मणः प्रकारः स्यात् । किमात्मकः ? **स्वाधीनता** वन्दारोः स्वातन्त्र्यम् । तथा **परीतिः** प्रदक्षिणा कृतिकर्मप्रकारः स्यात् । किंविशिष्टा ? त्रयी त्र्यवयवा । प्रदक्षिणास्तिस्र इत्यर्थः । तथा **निषद्या** कृतिकर्मप्रकारः स्यात् । किंविशिष्टा? **त्रयी** आवृत्त्या त्रीण्युपवेशनानि क्रियाविज्ञापनचैत्यभक्तिपञ्चगुरुभक्त्यनन्तरालोचनाविषयाणि। तथा **त्रिवारं** कृतिकर्मप्रकारः स्यात् चैत्यपञ्चगुरुसमाधिभक्तिषु त्रिःकायोत्सर्गविधानात् । तथाऽऽवर्ता **द्वादश** कृतिकर्मप्रकारः स्यात् । तथा **चत्वारि शिरांसि** मूर्धावनतयो वन्दना प्रधानभूता वार्हत्सिद्धसाधुधर्माः कृतिकर्मप्रकारः स्यात् । **उक्तं च सिद्धान्तसूत्रे —**

और पंचगुरुभक्ति इन दो भक्तियों के द्वारा ही हुआ करती है, न कि सिद्धभक्ति आदि चार भक्तियों के द्वारा ।

कृतिकर्म के छह भेदों का व्याख्यान करते हैं : —

कृतिकर्म छह प्रकार का है — स्वाधीनता, परीति,निषद्या, त्रिवार, आवर्त, और शिरोनति । वन्दना करने वाले की स्वतन्त्रता का ही नाम स्वाधीनता है। परीति नाम प्रदक्षिणा का है। अर्थात् कृतिकर्म करते समय तीन बार प्रदक्षिणा देना इसको परीति कहते हैं। निषधा नाम बैठने का है। सो यह तीन भेदरूप है। क्योंकि कृतिकर्म करने वाले को क्रिया विज्ञापना के अनंतर चैत्यभक्ति के अनंतर और पंचगुरुभक्ति के अनंतर इस तरह तीन बार आलोचना करते समय पुनः बैठना पड़ता है। त्रिवार शब्द से यहां पर वन्दना करते समय तीन बार किये जाने वाले कायोत्सर्ग को लेना चाहिये। क्योंकि इस प्रकरण में चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और समाधिभक्ति के अवसर पर तीन कायोत्सर्ग किये जाते हैं। ये प्रत्येक दिशा के तीन-तीन मिलाकर चारों दिशा के बारह हुआ करते हैं। इस तरह कृतिकर्मरूप वन्दना के छह भेद अथवा अंग हैं।

जैसा कि सिद्धांतसूत्र में भी कहा है कि —

अर्थात् — स्वाधीनता, परीति, निषद्या, त्रिवार, चतुःशिरोनति और बारह आवर्त ये

---

१. अभिषेकवन्दनायां सिद्धचैत्यपञ्चगुरु-शान्तिभक्तिभिः।

''आदाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तिऊणदं ।
चदुस्सिरं वारसावत्तं चेदि ''।

जिनचैत्यवन्दनायाःप्रचुरपुण्यास्रवणपूर्वपुण्योदयस्फारीकरणप्राक्तनपापविपाकापकर्षणापूर्वपातकसंवरणलक्षणां फलचतुष्टयीं प्रतिपाद्य सर्वदा तत्र त्रिसन्ध्यं मुमुक्षुवर्गमुद्यमयन्नाह—

दृष्ट्वार्हत्प्रतिमां तदाकृतिमरं स्मृत्वा स्मरंस्तद्गुणान्,
रागोच्छेदपुरःसरानतिरसात् पुण्यं चिनोत्युच्चकैः ।
तत्पाकं प्रथयत्यघं क्रशयते पाकाद्रुणद्ध्यास्रवत् ,
तच्चैत्यान्यखिलानि कल्मषमुषां नित्यं त्रिशुद्ध्या स्तुयात्।।

छह कृतिकर्म के भेद हैं।

जिन भगवान् की मूर्ति की वन्दना करने से चार प्रकार के महान् फल प्राप्त हुआ करते हैं। यथा—१. नवीन-नवीन महान् पुण्य कर्मप्रकृतियों का आस्त्रव हुआ करता है। २. पूर्व के संचित पुण्य कर्म के उदय में विशेषता प्राप्त हुआ करती है। उनकी स्थिति और अनुभाग बढ़कर फल में महत्ता प्राप्त होती है। ३. संचित पापकर्म की फलदान शक्ति का अपकर्षण हो जाया करता है। वह घटकर अत्यंत अल्प रह जाती है। ४. नवीन पापकर्म का संवर हो जाता है अर्थात् चैत्यवन्दना करने वाले को नवीन पाप का आस्त्रव नहीं होता । अतएव मुमुक्षुओं को तीनों ही सन्ध्या समयों में यह जिनचैत्य वंदना हमेशा और अवश्य ही करनी चाहिये । इसी बात को यहां पर साधुओं को चैत्यवन्दना के लिये प्रेरित करते हुए स्पष्ट करते हैं। :—

मूर्ति के देखते ही जिसकी वह मूर्ति है उसकी आकृति का तत्काल स्मरण हुआ करता है। अतएव जिन भगवान् की प्रतिमा का दर्शन करने वालों को भी दर्शन करते ही उनकी आकृति का स्मरण होता है। अरिहंत भगवान् के शरीर का आकार सम्पूर्ण मलदोषों से रहित स्फटिक के समान शुद्ध और समस्त धातु उपधातुओं से रहित तेजःपुंज के सदृश हुआ करता है। जैसा कि कहा भी है कि :—

हे भगवन् ! आपका शरीर ही आपकी वीतरागता को स्पष्ट कह रहा है। क्योंकि जिसके कोटर में अग्नि जल रही हो वह वृक्ष हरा भरा कभी नहीं रह सकता । इसी प्रकार जिसके अन्तरङ्ग में क्रोधादि कषाय जाज्वल्यमान हों उसके शरीर का आकार प्रशान्त कभी नहीं रह सकता । अतएव आपके शरीर का आकार ही कह रहा है कि आप वीतराग हैं।

चिनोति बध्नाति वन्दारुः । किं तत् ? **पुण्यं** सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्रलक्षणं सुकृतम्। कथम् ? उच्चकैरत्यर्थम् । किं कुर्वन् ? **स्मरन्** स्मृतिगोचरीकुर्वन् । कान् ? **तद्गुणान्** तस्यार्हद्भट्टारकस्य गुणान् । किंविशिष्टान् ? **रागोच्छेदपुरस्सरान्** । रागोच्छेदो वीतरागत्वं पुरस्सरः प्रमुखो येषां सर्वज्ञत्वसर्वदर्शित्वादीनां ते रागोच्छेदपुरस्सरास्तान् । कस्मात्तान् स्मरन् ? **अतिरसादऽनुरागोद्रेकात् । उक्तं च-**

''वपुरेव तवाचष्टे भगवन् वीतरागताम् ।
न हि कोटरसंस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाड्वलः।।'' इत्यादि ।

किं कृत्त्वा ? **स्मृत्वा** आध्याय । काम् ? **तदाकृति**मर्हन्मूर्तिम् । तल्लक्षणं यथा तथा—

शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः ।
जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम्।।

कथम् ? अरं झटिति । अर्हत्प्रतिमादर्शनानन्तरमेव स्मृत्त्वेत्यर्थः। किं कृत्त्वा ? दृष्ट्वा निरीक्ष्य । काम् ? **अर्हत्प्रतिमां** जिनेन्द्रचैत्यम् । तथा **प्रथयति** पृथूकरोति वन्दारुः। कम् ? **तत्पाकं** तस्य पुण्यस्योदयम् । तथा वन्दारुरघं पापं **क्रशयते** कृषीकरोति । कस्मात् ? **पाकात्** पाकमाश्रित्य । पापपाकमल्पीकरोतीत्यर्थः । 'नीतश्चाघनिदाघजः

इस प्रकार जिन भगवान् की प्रतिमा का दर्शन करने से अरिहंत भगवान् की आकृति की स्मृति और उससे पुनः साक्षात् उनके वीतरागता, सर्वज्ञता, सर्वदर्शित्व आदि गुणों का स्मरण हुआ करता है ; जिससे कि भक्ति में लीन हुआ वन्दारु चैत्यवन्दना करने वाला साधु उसी समय महान् पुण्य कर्म का सातावेदनीय, शुभ आयु ,शुभ नाम, और शुभ गोत्र कर्म का नवीन बन्ध किया करता है। तथा पूर्व के बंधे हुए पुण्य कर्म की स्थिति और अनुभाग में अतिशय उत्पन्न किया करता है। जिससे कि वे उदय काल में पहले की अपेक्षा अत्यधिक शुभ फल दिया करते हैं। और पूर्व के जो पापकर्म बन्धे हुए हैं उनकी स्थिति तथा अनुभाग में अपकर्षण किया करता है । जिससे कि वे पहले के समान तीव्र फल नहीं दे सकते , किन्तु मन्द मन्दतर फल देकर ही निर्जीण हो जाया करते हैं। इसी प्रकार वह चैत्यवन्दना करने वाला साधु नवीन पाप कर्म का संवर किया करता है।

अरिहंत भगवान् की प्रतिमा की वन्दना करने से तत्काल ये चार फल प्राप्त हुआ करते हैं। अतएव जिन्होंने चार घातिया कर्मों का तथा अपने और भी पापकर्मों या मल दोषों को नष्ट कर विशुद्धता प्राप्त कर ली है, तथा जो दूसरे वन्दना करने वाले भव्य जीवों का भी पापपङ्क दूर करने वाले हैं उन श्री अरिहंत भट्टारक की कृत्रिम और

क्लमभरः शान्तिम् ' इत्यभिधानात् । तथा वन्दारुरघं **रुणद्धि** निवारयति । किं कुर्वन् ? **अस्त्रवत्** पापं संवृणोतीत्यर्थः । यत एवं चत्वारि चैत्यवन्दनाफलानि प्रसिद्धानि **तत्** तस्मात्कारणात् **स्तुयाद्** वन्दतां मुमुक्षुः । कानि? **चैत्यानि** किंविशिष्टानि ? **अखिलानि** कृत्रिमाकृत्रिमाणि । केषाम् ? **कल्मषमुषां** घातिचतुष्टयलक्षणं स्वपापभयहृतवतां वन्दारुभव्यजनानां वा दुष्कृतमपहरताम् । कल्मषं मुष्णन्तीति कल्मषमुषः । कथं स्तुयात्? **नित्यं** त्रिसन्ध्यम् । कया ? **त्रिशुद्ध्या** मनोवाक्कायनिष्कलङ्कतया ।

स्वाधीनतेत्यस्यार्थं व्यतिरेकमुखेन समर्थयते—

नित्यं नारकवद्दीनः पराधीनस्तदेष न ।
क्रमते लौकिकेप्यर्थे किमङ्गास्मिन्नलौकिके ।।१६।।

यति । कोसौ ? **पराधीनः** परायत्तः पुमान् । किंविशिष्टः ? **दीनः**। कथम् । **नित्यं** सतंतम् । दुस्थित इत्यर्थः । किंवत् ? **नारक**वन्नैरयिकोयथा। उक्त च–' को नरकः परवशता'

अकृत्रिम सम्पूर्ण प्रतिमाओं का मुमुक्षुओं को तीनों ही सन्ध्या समयों में अपने मन,वचन और शरीर को शुद्ध रखकर अवश्य ही स्तवन करना चाहिये ।

अठारह दोषों से रहित जिनभगवान् का शरीर सातो ही धातुओं से रहित हुआ करता है। वह निर्मल स्फटिक के समान प्रकाशित होता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो तेज की साक्षात् मूर्ति ही है।

आकृति का स्मरण होते ही उन अर्हद्भट्टारक के वीतरागता प्रभृति अनेक गुणों का भी भक्ति के अत्यन्त उद्रेक से स्मरण होता ही है क्योंकि बाह्य आकृति के देखने से उस आकृति वाले के गुणों का भी बोध हो ही जाता है। सराग और वरीतराग व्यक्ति के आकार में अन्तर अवश्य रहा करता है। इस अंतर को ही देखकर आकृति वाले के गुणों का स्मरण हुआ करता है। अतएव इस विषय में कहा भी है कि :—

कृतिकर्म के छह अंगों में पहला जो स्वाधीनता बताया था उसके अर्थ का व्यतिरेक मुख से समर्थन करते हैं—

पराधीन जीव हमेशा ही दीन बना रहता है। दुःखमय अवस्था का निरंतर अनुभव करते रहने के कारण उसको नारकियों के समान ही समझना चाहिये। इसीलिये लोक में भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि "को नरकः ? परवशता"। अर्थात् किसी ने पूछा कि नरक किसको समझना चाहिये तो उत्तर देने वाले ने कहा कि पराधीनता को ।

भावार्थ—परतन्त्रता जीवको नारकी के समान दीन बना देती है। इस दीनता के कारण ही वह लौकिक कार्य—अपने चलने, फिरने ,उठने बैठने, स्नान, भोजन आदि

इति । यत एवं तत् तस्मादेष पराधीनः । पुमान् न **क्रमते** नाप्रतिहतं प्रवर्तते उत्सहते वा । क्व ? **अर्थे** प्रयोजने । किंविशिष्टे ? लौकिकेपि लोकंविदिते स्नानभोजनादौ। यल्लोके—

परार्थानुष्ठाने श्लथयति नृपं स्वार्थपरता,
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान् ,
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः ।।

किमङ्ग किं पुनः क्रमते अप्रतिहतं प्रवर्तते उत्सहते वा । क्व ? **अस्मिन्** प्रकृते सर्वज्ञाराधने । किंविशिष्टे ? **अलौकिके** लोकानामविदिते ।

अथ चतुर्दशभिः पद्यैर्देववन्दनादिक्रियाणां प्रयोगानुपूर्वीमुपदेष्टुकामः प्रथमं तावद्युत्सर्गान्तक्रमप्रकाशनाय पञ्चश्लोकीमाचष्टे—

श्रुतदृष्ट्यात्मनि स्तुत्यं पश्यन् गत्वा जिनालयम्।
कृतद्रव्यादिशुद्धिस्तं प्रविश्य निसही गिरा ।।१७।।
चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्बाष्पस्त्रिरानतः ।
परीत्य दर्शनस्तोत्रं वन्दनामुद्रया पठन्।।१८।।

कार्यों को भी अच्छी तरह स्वतन्त्रता और उत्साह के साथ सम्पादित नहीं कर सकता । जब लौकिक कार्यों को भी भले प्रकार निर्विघ्न सिद्ध नहीं कर सकता, तब मित्र ? अलौकिक कार्यों के विषय में तो कहना ही क्या । अर्थात् सर्वज्ञदेव के आराधन प्रभृति कृतिकर्म का वह अप्रतिहतरूप से कभी पालन नहीं कर सकता । इसीलिये लोक में भी यह उक्ति प्रसिद्ध है कि :—

अर्थात् पराधीन रहने वाला मनुष्य किसी भी तरह सुख का अनुभव नहीं कर सकता।

भावार्थ—जिसप्रकार लौकिक कार्यों के लिये स्वाधीनता की आवश्यकता है उसी प्रकार या उससे भी अधिक अलौकिक— लोकोत्तर चैत्यवंदना प्रभृति कार्यों को करने के लिये भी स्वाधीनता की आवश्यकता है।

अब चौदह पद्यों में देववन्दना आदि क्रियाओं को किस क्रम से करना चाहिये उसका उपदेश करते हैं। किंतु उसमें सबसे पहले व्यत्सर्ग पर्यंत की क्रियाओं का क्रम पांच श्लोकों में बताते हैं :—

जिन भगवान् की वन्दना करने के लिये जिनालय को जाते समय मुमुक्षुओं को भावरूप श्री अरिहंत भगवान् का स्वरूप सम्पूर्ण आत्माओं में अथवा अपने ही चित्स्वरूप में परमागम के ज्ञानरूपी नेत्रों के द्वारा देखते हुए गमन करना चाहिये । अर्थात् भावरूप अर्हदादिका चर्मचक्षु के द्वारा अवलोकन नहीं हो सकता ; अतएव श्रुतज्ञानरूपी नेत्रों के

कृत्वेर्यापथसंशुद्धिमालोच्यानम्रकाङ्घ्रिदोः ।
नत्वाश्रित्य गुरोः कृत्त्यं पर्यङ्कस्थोग्रमङ्गलम् ।।१९।।
उक्तात्तसाम्यो विज्ञाप्य क्रियामुत्थाय विग्रहम्।
प्रह्वीकृत्य त्रिभ्रमैकशिरोविनतिपूर्वकम् ।।२०।।
मुक्ताशुक्त्यङ्कितकरः पठित्वा साम्यदण्डकम्।
कृत्वावर्तत्रयशिरोनती भूयस्तनुं त्यजेत् ।।२१।।पञ्चकम्।

त्यजेदुत्सृजेद् निर्ममतया प्रतिपद्येत् साधुः । काम् ? **तनुं** शरीरम् । किं कृत्वा ? कृत्वा । के? **आवर्तत्रयशिरोनती** । आवर्तत्रयं च शिरोनतिश्च ते । कथम् ? **भूयः** पुनः। साम्यदण्डकपाठान्तेपीत्यर्थः । किं कृत्त्वा ? पठित्वा । किम् ? **साम्यदण्डकं** ' णमो अरहंताणं ' इत्यादि सामायिकदण्डकम् । कथं कृत्त्वा ? **त्रिभ्रमैकशिरोविनतिपूर्वकम्।** त्रयो भ्रमाः समाहृतास्त्रिभ्रममावर्तत्रयम् ।एका चासौ शिरोविनतिश्चैकशिरोविनतिः । त्रिभ्रमं चैकशिरोविनतिश्च त्रिभ्रमैकशिरोविनती । ते पूर्वे पूर्वकालभाविन्यौ यत्र पठनकर्मणि तदेवम्। किंविशिष्टः सन् ?मुक्ताशुक्त्यङ्कितकरः मुक्ताशुक्त्या प्रागुक्तलक्षणयाङ्कितौ चिन्हितौ करौ हस्तौ येन स एवम् । किं कृत्वा ? **प्रह्वीकृत्य** नम्रं विधाय । कम् ? **विग्रहं** शरीरम्। किं कृत्वा ? **उत्थाय** उद्भीभूय। किं कृत्वा ? **विज्ञाप्य** । काम् ? **क्रियां** प्रकृताम् । वन्दनां ज्ञापयित्वेत्यर्थः । कथंभूतो भूत्वा ? **आत्तसाम्यः** "खमामि सव्वजीवाणं" इत्यादि सूत्रोच्चारणेन प्रतिपन्नसामायिकः । किं कृत्वा ? **उक्त्वा** पठित्वा । किं तत् ? अग्रमङ्गलं

द्वारा उनका स्वरूप अपने में ही देखते हुए मंदिर में जाना चाहिये । और द्रव्य ,क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि करके "निःसही निःसही निःसही " इसप्रकार उच्चारण करते हुए जिनमंदिर में प्रवेश करना चाहिये । वहां पहुँचकर जिन भगवान् की प्रतिमा का दर्शन करते ही हृदय में अत्यन्त आनंद-प्रमोद के उत्पन्न होने से जिसकी आंखों से हर्ष के अश्रु झड़ रहे हैं ऐसे उस वन्दना करने वाले को तीन बार भगवान् को नमस्कार करना चाहिये । उस के बाद जिनालय - गर्भगृह अथवा उस वेदी की जिसमें श्री जिनचैत्य विराजमान हों तीन बार प्रदक्षिणा देनी चाहिये । तदनन्तर दर्शनस्तोत्र का पाठ करते हुए अर्थात्—"अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य देव त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन" इत्यादि भगवान् के दर्शन विषयक स्तोत्र का अथवा सम्यक्त्व को उत्पन्न व पुष्ट करने वाले "दृष्टं जिनेंद्रभवनं भवतापहारि" इत्यादि सामान्य से किसी भी स्तोत्र का उच्चारण करते हुये वन्दनामुद्रा के द्वारा ईर्यापथ शुद्धि करनी चाहिये । अर्थात् मार्ग में चलने से जीवों की विराधना आदि दोष जो संभव हैं उनका पडिक्कमामि आदि दण्डक के द्वारा शोधन करना चाहिये। इसके बाद इच्छामि इत्यादि दण्डक का उच्चारण करके निन्दा गर्हारूप

मुख्यमङ्गलं जिनेन्द्रगुणस्तोत्र "सिद्धं संपूर्णभव्यार्थम्" इत्यादि रूपम् । किंविशिष्टः सन्? **पर्यङ्कस्थः** पर्यङ्कासनेन तिष्ठन् । किं कृत्वा ? **आश्रित्य** । किं तत् ? **कृत्यम्** । कस्याग्रे? **गुरोर्धर्माचार्यस्य** । तद्दूरे देवस्याग्रे देववन्दनां प्रतिक्रमणादिकं वा कृत्यमाश्रित्य नमोस्तु देववंदनां करिष्यामीत्यादिरूपेणाङ्गीकृत्य । किं कृत्वा ? **नत्वा** प्रणम्य गुरुम् । कथं कृत्वा ? आनम्रकांघ्रिदोः समन्तात्साधुत्वेन नमन्मस्तकपादहस्तम् । कं च मस्तकमङ्घ्री च पादौ दोषौ च हस्तौ कांघ्रिदोरिति समाहारद्वन्द्वः । आनम्रं कांघ्रिदोर्यत्र नमनकर्मणि तदानम्रकांघ्रिदोः । क्रियाविशेषणमेतत् । अथवा आनम्रं काघ्रिदोर्यस्य स आनम्रकाघ्रिदोः क्रियाकारी । किं कृत्वा ? **आलोच्य** "इच्छामि " इत्यादिदण्डकेन निन्दागर्हारूपामालोचनां कृत्वा । किं कृत्वा ? **कृत्वा** । काम् ? **ईर्यापथसंशुद्धिमैर्यापथिकदोषविशुद्धिम्।** "पडिक्कमामि" इत्यादिदण्डकेन विधायेत्यर्थः । किं कुर्वन् ? **पठन्** । किं तत् ? दर्शनस्तोत्रं दर्शने भगवदवलोकनविषये दर्शनाय वा सम्यक्त्वाय दर्शनवद्वा सामान्यविषयत्वात् स्तोत्रं स्तवनं "दृष्टं जिनेन्द्रभवनम् " इत्यादि सामान्यस्तवनजातं दर्शनस्तोत्रम्। कया ? **वन्दनामुद्रया** प्रागुक्तलक्षणया । किं कृत्वा ? **परीत्य** प्रदक्षिणीकृत्य । कम् ? जिनालयम्। कथम् ? त्रिस्त्रीन् वारान् । किंविशिष्टः सन् ? आनतश्चैत्याय प्रणतः । कथम् ? त्रिः । पुनः

आलोचना करनी चाहिये । पुनः धर्माचार्य के समक्ष और यदि गुरु-धर्माचार्य उपस्थित न हों तो भगवान् के ही सामने पंचाङ्ग नमस्कार—एकशिर, दो हाथ और दो घोंटू इन पांच अंगो को भले प्रकार नम्रीभूत करके कर्तव्य कर्म को स्वीकार करना चाहिये । अर्थात् देववन्दना या प्रतिक्रमण जो कुछ करना हो उसकी, नमोस्तु भगवन् ! देववन्दनां करिष्यामि—हे भगवन् नमस्कार हो अब मैं देववन्दना करूंगा, "यह कहकर अथवा" नमोस्तु भगवन् प्रतिक्रमणं करिष्यामि- हे भगवन् नमस्कार हो अब मैं प्रतिक्रमण करूंगा "यह कहकर" कर्तव्य की प्रतिज्ञा करनी चाहिये । इसके बाद पर्यङ्कासन से बैठकर जिनेन्द्र भगवान् के गुणों को प्रकट करने वाले "सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थम्" इत्यादि स्तोत्र का पाठ करना चाहिये । पुनः "खम्मामि सव्वजीवाणं" इत्यादि सूत्रपाठ के द्वारा साम्यभाव—सामायिक को प्राप्त होना चाहिये । पुनः वन्दना क्रिया का विज्ञापन करके खड़े होकर शरीर को नम्रीभूत बनाकर दोनों हाथों की मुक्ताशुक्ति मुद्रा बनाकर उससे तीन आवर्त और एक शिरोनति करके "णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दण्डक का पाठ करना चाहिये तथा पाठ पूर्ण होने पर अन्त में भी आदि की तरह तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये । इस प्रकार सामायिक दण्डक का पाठ आवर्त और शिरोनति के साथ-साथ पूर्ण होने पर व्युत्सर्ग धारण करना चाहिये । शरीर में ममत्वभाव का सर्वथा परित्याग करना चाहिये ।

किंविशिष्टः ? **चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्बाष्पः** । चैत्यस्यालोको दर्शनं चैत्यालोकः। तेनोद्यन्नुद्गचमोदश्चैत्यालोकोद्यदानन्दः । तेन गलन्ति स्रवन्ति वाष्पाण्यश्रूणि यस्य स एवम् । किं कृत्त्वा ? **प्रविश्य** । कम् ? तं जिनालयम् । कया ? **निसहीगिरा** निसही-केति शब्दोच्चारणेन । कथंभूतो भूत्वा ? **कृतद्रव्यादिशुद्धिः** । कृता द्रव्यक्षेत्रकालभाव-विशुद्धिर्येन स एवम् । गत्वा । कम् ? जिनालयम् । किं कुर्वन् ? पश्यन्नवलोकयन् । किं तत् ? स्तुत्यं भावरूपमर्हदादिम् । क्व ? आत्मनि विश्वरूपे स्वचिद्रूपे । कया ? **श्रुतदृष्ट्या** परमागमचक्षुषा ।।

श्लोकद्वयेन व्युत्सर्गे ध्यानविधिमुपदिशति —

जिनेन्द्रमुद्रया गाथां ध्यायेत् प्रीतिविकस्वरे ।
हृत्पङ्कजे प्रवेश्यान्तर्निरुध्य मनसानिलम्।।२२।।
पृथग् द्विद्व्येकगाथांशचिन्तान्ते रेचयेच्छनैः।
नवकृत्वः प्रयोक्तैवं दहत्यंहः सुधीर्महत्।।२३।। युग्मम्।

कायोत्सर्गे **ध्यायेच्चिन्तयेत्साधुः** । काम् ? **गाथां** "णमो अरहंताणं" इत्यादिकाम्। कया? जिनेन्द्रमुद्रया प्रागुक्तलक्षणया । किं कृत्त्वा ? **निरुध्य** संयम्य । कम् ? **अनिलं** प्राणवायुम् । कथम् ? **सह** । केन ? **मनसा** चित्तेन । करणे सहार्थे वा तृतीया । किं कृत्त्वा ? **प्रवेश्य** । कम् ? मनसा सहानिलम् । क्व ? **अन्तर्मध्ये** । कस्मिन् ? हृत्पङ्कजे हृदयारविन्दे । किंविशिष्टे ? **प्रीतिविकस्वरे** आनन्देन विकसनशीले । तथा **रेचयेद्वहिर्निः**

भावार्थ—यहां पर देववन्दना से लेकर व्युत्सर्ग पर्यन्त जो क्रियाएं जिस क्रम से बताई हैं उनको उसी क्रम से करना चाहिए । इनके द्रव्य और भावरूप भेदों का स्वरूप पहले बता चुके हैं। तथा वन्दनामुद्रा , मुक्ताशुक्तिमुद्रा, पर्यंकासन का भी स्वरूप पहले लिख चुके हैं। तदनुसार ही उनको करना चाहिये।

अब दो श्लोक द्वारा व्युत्सर्ग में ध्यान करने की विधि बताते हैं —

व्युत्सर्ग के समय साधुओं को अपनी प्राणवायु मनके साथ-साथ भीतर प्रविष्ट करके आनन्द से विकसित हुए हृदय कमल में रोक कर जिनेन्द्र मुद्रा के द्वारा "णमो अरिहंताणं" प्रभृति गाथा का ध्यान करना चाहिये । तथा गाथा के दो दो और एक अंशका क्रम से पृथक् २ चिन्तवन करके अन्तमें उस प्राणवायु का धीरे-धीरे रेचन करना चाहिये— प्राणवायु को बाहर निकालना चाहिये । इस प्रकार अपनी दृष्टि को अन्तरङ्ग की तरफ लगाकर नौ बार प्राणायाम का प्रयोग करने वाला संयमी चिरकाल के संचित महान् पापकर्मों को भी भस्म कर देता है।

सारयेदनिलं साधुः । कथम् ? **शनैर्मन्दं** मन्दम् । क्व ? द्विद्व्येकगाथांश चिन्ताान्ते । कथम् ? पृथक् पृथक्त्वेन । गाथाया अंशा भागा गाथांशाः। द्वौ च द्वौ चैकश्च द्विद्व्येकाः । ते च ते गाथांशाश्च द्विद्व्येकगाथांशाः तेषां चिन्तद्विद्व्यकगाथांशचिन्ता । तस्या अन्ते प्रान्ते द्विगाथांशचिन्तान्ते पुनर्दिगाथांशचिन्तान्ते, एकगाथांशचिन्तान्ते चेत्यर्थः । तथा हि— गाथाया द्वावंशौ "णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं" इति । पुनद्वौ "णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" इति । एकस्त्वंशो "णमो लोए सव्वसाहूणं " इति । गाथा च मात्रावर्णविशिष्टं छन्दः, "शेषं गाथा त्रिभिः षड्भिश्चरणैश्चोपलक्षिता" इत्यभिधानात् ।

यथाह—

शनैः शनैर्मनोऽजस्रं वितन्द्रः सह वायुना ।
प्रवेश्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां नियन्त्रयेत् ।।
विकल्पा न प्रसूयन्ते विषयाशा निवर्तते ।
अन्तः स्फुरति विज्ञानं तत्र चित्ते स्थिरीकृते ।।
स्थिरीभवन्ति चेतांसि प्राणायामावलम्बिनाम् ।
जगद्वृत्तं च निःशेषं प्रत्यक्षमिव जायते ।।
स्मरगरलमनोविजयं समस्तरोगक्षयं वपुःस्थैर्यम्।
पवनप्रचारचतुरः करोति योगी न संदेहः।।

भावार्थ—प्राणायाम का महत्व अत्यन्त अधिक है। जैसा कि कहा भी है कि—

साधुओं को अप्रमत्त होकर प्राणवायु के साथ-साथ धीरे-धीरे अपने मन को अच्छी तरह भीतर प्रविष्ट करके हृदय कमल की कर्णिका में रोकना चाहिये । इस तरह प्राणायाम के सिद्ध होने से चित्त स्थिर हो जाया करता है। जिससे की अन्तरङ्ग में संकल्प विकल्पों का उत्पन्न होना बन्द हो जाता है, विषयों की आशा निवृत्त हो जाती है, और अन्तरङ्गमें विज्ञान की मात्रा बढ़ने लगती है। प्राणायाम करने वालों के मन ऐसे स्थिर हो जाते हैं कि उनको जगत् का सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रत्यक्ष सरीखा दीखने लगता है। प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु का प्रचार करने में चतुर योगी कामदेवरूपी विष और मन पर विजय प्राप्त कर लिया करता है। तथा इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि वह उसके द्वारा रोगों का नाश कर सकता है, और शरीर को स्थिर बना लिया करता है।

तथा और भी कहा है कि—

अर्थात् प्राणायाम करने वाले साधुओं की दृष्टि जब बाह्य विषयों की तरफ से हटकर अन्तरङ्ग की तरफ उन्मुख होकर आत्मरूप में अच्छी तरह लीन हो जाती है उस समय मन ,पवन और इन्द्रियों की गति बन्द होकर साहजिक अवस्था प्राप्त हुआ करती

अपि च—

दोयक्खभुआ दिट्ठी अंतमुही सिवसरूवसंलीणा।
मणपवणक्खविहूणा सहजावत्था स णायव्वा।।
जत्थ गया सा दिट्ठी तत्थ मणं तत्थ संठियं पवणं।
मणपवणलए सुण्णं तहिं च जं फुरइ तं ब्रह्म।।

एतत्फलमाह- नवेत्यादि । **सुधीरन्तर्निहितदृष्टिः** संयमी दहति भस्मी करोति । किं तत् ? अहः पापम् । कीदृशम् ? **महद्** बृहत् । चिरसंचितमित्यर्थः। किंविशिष्टः सन् ? **एवमनेन** प्रकारेण । **प्रयोक्ता** प्राणायामस्य कर्ता । कथम् ? **नवकृत्त्वो** नववारान् ।

अशक्तान् प्रत्युपांशु वाचनिकं पञ्चनमस्कारजपमनुज्ञाय तस्य मानसि-कस्य पुण्यप्रसूतावऽन्तरमभिधत्ते—

है। जहाँ पर दृष्टि जाकर स्थिर हो जाती है, वहीं पर मन और वहीं पर पवन भी स्थिर हो जाता है। इस प्रकार मन और पवन के स्थिर हो जाने पर बाह्य जगत से शून्यता प्राप्त होती है उस समय में ब्रह्म प्रकट हुआ करता है।

प्राणवायु के संचार क्रम को ही प्राणायाम कहते हैं इसके मूल में तीन भेद हैं- कुम्भक, रेचक, पूरक । वायु के भीतर खींचने को कुम्भक और वहां रोक रखने को पूरक तथा बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। योगियों को व्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग के समय ध्यान करते हुए ये तीनों ही क्रिया करनी चाहिये । इस ध्यान में जिनमुद्रा के द्वारा णमो अरहंताणं प्रभृति पंचनमस्कार महामंत्ररूप गाथा का चिन्तवन करना चाहिये । तथा इस गाथा के क्रम से दो दो और एक अंश का विभाग करके उनका पृथक्-पृथक् चिन्तवन करना चाहिये । अर्थात् पहले भाग में णमो अरहंताणं ,णमो सिद्धाणं इन दो पदों का और दूसरे भाग में णमो आइरियाणं , णमो उवज्झायाणं इन दो पदों का तथा तीसरे भाग में णमो लोए सव्वसाहूणं इस एक पद का ध्यान करना चाहिये । इसके अनंतर आनन्द से प्रफुल्लित हृदय कमल में मन के साथ रुकी हुई प्राण वायु का धीरे धीरे रेचन करना चाहिये। इस तरह कम से कम नौ बार प्रयोग करना चाहिये। कम से कम इस नौ बार की क्रिया से ही संयमियों के महान् पाप का क्षय हो जाता है।

जो इस प्राणायाम के द्वारा ध्यान करने में असमर्थ हैं वे पास का कोई भी आदमी न सुन सके इस तरह से उक्त पंचनमस्कार मंत्र का वचन द्वारा भी जप कर सकते हैं, इसी बात को बताते हैं। किंतु इसके साथ ही यह भी दिखाते हैं कि इस वाचनिक जप के द्वारा तथा उक्त मानसिक जप -ध्यान के द्वारा जो पुण्य का संचय होता है उसमें कितना अंतर है।

उक्त व्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग के समय जो साधु पूर्वोक्त प्राणायाम के करने में

वाचाप्युपांशु व्युत्सर्गे कार्यो जप्यः स वाचिकः।
पुण्यं शतगुणं चैत्तः सहस्त्रगुणमावहेत्।।२४।।

कार्यः कर्तव्यो यथोक्तप्राणायामासमर्थैः साधुभिः । कोसौ ? **जप्यः** सर्वैनसामपध्वंसी पञ्चनमस्कारजप इत्यर्थः । कया ? **वाचापि**। अपि शब्दोऽशक्तान् प्रत्यनुज्ञां द्योतयति । कथं कृत्वा ? **उपांशु** यथान्यो न शृणोति । स्वसमक्षमेवेत्यर्थः। क्व ? **व्युत्सर्गे** कायोत्सर्गे। चैत्तवाचिकयोर्जपयोः फलविशेषमाह- स इत्यादि । **आवहेत्** कर्यात् । कोसौ ? स वाचिको जप्यः । किं तत् ? **पुण्यम्** । किंविशिष्टम् । **शतगुणं** दण्डकोच्चारणादेः सकाशाच्छतेन गुणितम् । तथा **चैत्तश्च** मानसो जप्य आवहेत्पुण्यम् । किंविशिष्टम् ? सहस्त्रगुणम् ।

यथाह—

वचसा वा मनसा वा कार्यो जप्यः समाहितस्वान्तैः।
शतगुणमाद्ये पुण्यं सहस्त्रगुणितं द्वितीये तु।।

मनुरप्याह—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणैः साहस्त्रो मानसः स्मृतः।।

असमर्थ हैं वे सम्पूर्ण पापों का क्षय करने में समर्थ पंचनमस्कार महामंत्र का वचन द्वारा जप कर सकते हैं। किंतु यह जप स्वयं अपनी ही समझ में आवे उसको दूसरा कोई न सुन सके इस तरह से करना चाहिये । परन्तु यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि इन दोनों ही जपों के फल में बहुत बडा अन्तर है। अर्थात् दण्डकों का पाठोच्चारण करने से जितना पुण्य का संचय होता है उससे सौगुणा पुण्य इस वाचनिक जप करने से होता है। किंतु उक्त मानसिक जप करने से हजार गुणा पुण्य का संचय हुआ करता है। जैसा कि कहा भी हैं कि—

अर्थात् साधुओं को एक चित्त होकर पंचनमस्कार मंत्र का जप वचन अथवा मन दोनों में से किसी के भी द्वारा करना चाहिये। किंतु प्रथम पक्ष में वचन के द्वारा जप करने में सौ गुणा पुण्य होता है। तो द्वितीय पक्ष में-मन के द्वारा जप करने में हजारगुणा पुण्य हुआ करता हैं।

इस विषय में मनु ने भी कहा है कि—

अर्थात् विधियज्ञ की अपेक्षा जपयज्ञ का फल दशगुणा अधिक है उसमें भी वाचनिक जप का फल सौ गुणा है तो मानसिक जप का फल हजार गुणा है।

पञ्चनमस्कारमाहात्म्यं श्रद्धानोद्दीपनार्थमनुवदति—

अपराजितमन्त्रो वै सर्वविघ्नविनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः।।२५।।

वै स्फुटमपराजितमन्त्रो मत इष्टः शिष्टैः। किंविशिष्टः ? सर्वविघ्नविनाशनः सर्वेषां प्रत्यूहानां प्रध्वंसकः। न केवलं, प्रथमं मुख्यं मङ्गलं च मतः। केषु मध्ये ? मङ्गलेषु मलगालनोपायेषु पुण्यदानोपायेषु च। किंविशिष्टेषु ? **सर्वेषु**।

उक्तं च—

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंङ्गलं।।

एकैकस्यापि परमेष्ठिनो विनयकर्मणि लोकोत्तरं महिमानमावेदयोति —

नेष्टं विहन्तुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः।।२६।।

प्रभुः समर्थो **न** भवति। कोसौ ? **अन्तरायो**ऽन्तरायाख्यकर्म। किं कर्तुम् ? **विहन्तुं** विघ्नयितुम्। किं तत् ? **इष्टं** वाञ्छितं वस्तु। किंविशिष्टः सन् ? **शुभभावभग्नरसप्रकर्षः** रसस्य विपाकस्य प्रकर्ष इष्टघातनसामर्थ्य रसप्रकर्षः। शुभभावेन प्रशस्तपरिणामेन चित्तप्रसत्तिलक्षणेन भग्नः प्रध्वंसितो रसप्रकर्षो यस्य स तथोक्तः। तत् तस्माद्भवति। कासौ ? **नुत्यादिः** प्रणामस्तवनाशीर्जयवादादिलक्षणा वन्दना। किंविशिष्टा? **इष्टार्थकृत्**

मुमुक्षु भव्यों के श्रद्धान को उद्दीप्त करने के लिये पंचनमस्कार मंत्र का माहात्म्य बताते हैं—

यह पंचनमस्कार मंत्र सम्पूर्ण विघ्न—पाप अथवा अन्तरायों का अच्छी तरह नाश करने वाला है। इतना ही नहीं बल्कि जितने भी मंगल—पाप के गलाने वाले उपाय हैं, अथवा पुण्य को देने वाले साधन हैं उन सभी में यह मुख्य-प्रधान है। अतएव शिष्ट पुरुषों ने इसको यह अपराजित मंत्र है ऐसा निश्चितरूप से माना है। जैसा कि कहा भी है कि—

इस प्रकार पंच परमेष्ठियों की वन्दना करने से जो माहात्म्य प्राप्त होता है उसको बताकर एक एक परमेष्ठी का भी विनय करने से जो लोकोत्तर महिमा प्राप्त हुआ करती है उसको दिखाते हैं।

अन्तराय कर्म के फल देने की शक्ति शुभ परिणामों के द्वारा नष्ट हो जाया करती है। तब वह इच्छित वस्तु की प्राप्ति विघ्न डालने को समर्थ नहीं हो सकता। अतएव शुभ परिणामों को सिद्ध करने के लिये अर्हदादि में से इच्छानुसार किसी के भी गुणों में अनुराग रखकर प्रणाम-स्तुति या वन्दना करना अभीष्ट प्रयोजन का साधक हो जाता है।

समीहित प्रयोजनसाधनी। कस्य ? अर्हदादेर्जिनेन्द्रसिद्धप्रभृतेः। केन ? **कामचारेण** कर्तुर्यदृच्छया। कस्मात्क्रियमाणा ? गुणानुरागाद् भावविशुद्धिमाश्रित्य।।

कायोत्सर्गानन्तरकृत्यं श्लोकद्वयेनाह—

प्रोच्य प्राग्वत्ततः साम्यस्वामिनां स्तोत्रदण्डकम्।
वन्दनामुद्रया स्तुत्वा चैत्यानि त्रिप्रदक्षिणम्।।२७।।
आलोच्य पूर्ववत्पञ्चगुरून् नुत्वा स्थितस्तथा।
समाधिभक्त्याऽस्तमलः स्वस्य ध्यायेद्यथावलम्।।२८।। (युग्मम्)

ध्यायेत्साधुः। कस्य ? **स्वस्य** आत्मनः आत्मध्यानं विदध्यादित्यर्थः। कथम् ? **यथाबलं** यथाशक्ति। कथंभूतो भूत्वा ? **समाधिभक्त्या स्तमलः** समाधिभक्त्या अस्ता निराकृता मला वन्दनातिचारा येन स एवम्। किं कृत्त्वा ? **नुत्वा**। कान् ? **पञ्चगुरून**र्हदादीन्। वन्दनामुद्रयेत्यत्रापि योज्यम्। कथम् ? **तथा** तेन"विज्ञाप्य क्रियाम्" इत्यादिप्रबन्धोक्तेन प्रकारेण। कथं भूतो भूत्वा ? **स्थितः** उद्भश्चैत्यभक्तिवदत्र प्रदक्षिणानभ्युपगमात्। किं कृत्वा ? **आलोच्य** 'इच्छामि भन्ते चेइयभत्ति काउस्सग्गो कओ "इत्यादिना। किंवत्?

भावार्थ—अरिहंतादि पंचपरमेष्ठियों में से किसी के भी गुणों का स्मरण करने से और उनको नमस्कार आदि करने से परिणामों में जो विशुद्धि प्राप्त हुआ करती है। उससे अन्तराय कर्म की सामर्थ्य—फलदानशक्ति क्षीण हो जाया करती है जिससे कि वह किसी भी इष्ट वस्तु की प्राप्ति में विघ्न नहीं डाल सकता , फलतः किसी भी परमेष्ठी की वन्दना करने से सभी प्रयोजनों की सिद्धि हो सकती है।

इस प्रकार कायोत्सर्ग तक की क्रियाओं का क्रम आदि बता कर उसके अनंतर के कार्य को भी दो श्लोकों द्वारा बताते हैं—

चैत्यभक्ति और कायोत्सर्ग—व्युत्सर्ग तथा उसमें बताये गये ध्यान को कर चुकने पर पहले की तरह—शरीर को नम्रीभूत करने आदि की जो विधि बताई है तदनुसार समायिक के स्वामी श्री चौबीस तीर्थंकर भगवान् की भक्ति के भार से पूर्ण होकर "थोस्सामि" प्रभृति स्तोत्र दण्डक बोलना चाहिये। पुनः तीन प्रदक्षिणा देते हुए वन्दनामुद्रा के द्वारा जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा की स्तुति-वन्दना करनी चाहिये। उसके बाद एक शिर दो बाहू और दो घोंटुओं को नम्रीभूत करने आदि की जो विधि बताई है उसी प्रकार यहां भी " इच्छामि भत्ते चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ" इत्यादि पाठ बोलकर आलोचन करके खड़े होना चाहिये। क्योंकि चैत्यभक्ति की तरह यहां पर प्रदक्षिणा नहीं दी जाती, अतएव खड़े होकर पहले की तरह ही कर्तव्य क्रिया की विज्ञापना करके अर्हदादिक पंचगुरुओं को वन्दना मुद्रा के द्वारा नमस्कार करना चाहिये। यहां पर भी पंचाङ्ग

पूर्ववत् आनम्रकांऽघ्रिदोरित्यर्थः । पञ्चगुरून्नत्वा स्थितस्तथेत्यत्रापि आलोच्य पूर्ववदित्येतत्संबन्धनीयम् । तत्र "इच्छामि भत्ते पंचगुरुभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं । अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं" इत्यादिकामालोचनां कुर्यादित्यर्थः। किं कृत्वा ? **स्तुत्वा** वन्दित्वा । कानि ? **चैत्यानि** । कया ? **वन्दनामुद्रया** प्रागुक्तलक्षणया। कथं कृत्वा ? **त्रिप्रदक्षिणम्** । तिस्रः प्रदक्षिणा यत्र चैत्यस्तवनकर्मणि तदेवम् । किं कृत्वा ? **प्रोच्य** प्रकर्षेण भक्तिभरनिर्भरत्वलक्षणेनोक्त्वा । किं तत् ? **स्तोत्रदण्डकं "थोस्सामि"** इत्यादिकम् । केषाम् ? **साम्यस्वामिनाम्** सामायिकप्रयोक्तृणां चतुर्विंशतितीर्थंकराणाम् । किंवत् ? **प्राग्वत्** पूर्ववद् "विग्रहं प्रह्वीकृत्य" इत्यादिविधिना। कथम् ? **ततश्चैत्यभक्तिकायोत्सर्गकरणानन्तरम्** ।

आत्मध्यानमन्तरेण केनचिन्मोक्षो न स्यादित्युपदिशति—

नात्मध्यानाद्विना किंचिन्मुमुक्षोः कर्महीष्टकृत्।
किंत्वस्त्रपरिकर्मेव स्यात् कुण्ठस्याततायिनि।।२९।।

हि यस्मान्न **किंचित्कर्म** क्रिया च भवति । किंविशिष्टम् ? इष्टकृन्मोक्षसाधकम् । कस्य ? **मुमुक्षोर्मोक्तुमिच्छोः** साधोः । कथम् ? **विना** । कस्मात् ? **आत्मध्यानात्** । आत्मध्यानमेव मुमुक्षोर्मोक्षसाधकं भवेदित्यर्थः । तर्हि कर्मान्तरं किं कुर्यादित्याह – किं **तु स्यात्** । किं तत् ? आत्मध्यानवर्जं मुमुक्षोः कर्म । किमिव ? अस्त्रपरिकर्मेव शस्त्राभ्यासो

नमस्कारपूर्वक "इच्छामि भंत्ते पंचगुरुभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं, अट्ठमहापाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं" इत्यादि पाठ बोलकर आलोचना करना चाहिये । इसके बाद वन्दना सम्बन्धी अतीचारों को समाधिभक्ति के द्वारा निःशेष करके शक्ति के अनुसार अपना ध्यान करना चाहिये अर्थात् अपने बलवीर्यादि का विचारकर आत्मध्यान में तत्पर होना चाहिये ।

आत्मध्यान को छोड़कर अन्य किसी भी उपाय से मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती, इस बात को प्रकट करते हैं।

मुमुक्षुओं की आत्मध्यान से रहित कोई भी क्रिया इष्टप्रयोजन—मोक्ष की साधक नहीं हो सकती । जो मोक्ष की अभिलाषा रखकर अन्य कायक्लेश तपश्चरणादि क्रिया तो करते हैं परन्तु निजआत्मस्वरूप का ध्यान नहीं करते अनका वह क्रिया करना ठीक वैसा ही समझना चाहिये जैसे कि कोई पुरुष शस्त्र चलाने का अभ्यास तो करता है परन्तु क्रिया में मंद है। यदि कोई शत्रु हथियार लेकर मारने को उद्यत हो तो उसका वह निवारण नहीं कर सकता । उसी प्रकार केवल बाह्य क्रिया करने वाला साधु कर्मशत्रुओं का निवारण नहीं कर सकता ।

यथा । कस्य ? **कुण्ठस्य** क्रियामन्दस्य । क्व विषये ? **आततायिनि** हन्तुमुद्यते शत्रौ ।

उक्तं च —

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यद्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भजन्तः स्वयं,
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वंश यान्ति प्रमादस्य च।।

भावार्थ—मोक्ष की सिद्धि आत्मध्यान से ही हो सकती है।

जैसा कि कहा भी है कि—

उन पुरुषों को संसारसमुद्र में डूबा हुआ समझना चाहिये जो कि कर्म करने—बाह्य आचरण के पालन करने का ही एकान्तपक्ष पकड़कर बैठे हैं; क्योंकि वे ज्ञान के अनुभव से शून्य हैं। इसी प्रकार वे मनुष्य भी संसार में निमग्न ही समझने चाहिये जो कि ज्ञान को ही एकान्ततः आत्मोद्धार का उपाय मानते हैं क्योंकि वे आचरण करने में अत्यंत स्वच्छन्द और मंदोद्यमी हो जाते हैं। अतएव वे ही साधुजन संसारसमुद्र को तरकर विश्व के ऊपर विराजमान हो सकते हैं, जो कि स्वयं ज्ञान का सेवन—आत्मध्यान का अभ्यास करते हुए बाह्य चारित्र का भी पालन करते हैं और कभी भी प्रमाद के वशीभूत नहीं हुआ करते ।

रत्नकरण्डश्रावकाचार के प्रमाण

अधुना सामायिकगुणसम्पन्नत्वं श्रावकस्य प्ररूपयन्नाह[१] —

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ।।१८।।

सामयिकः समयेन प्राक्प्रतिपादितप्रकारेण चरतीति सामायिकगुणोपेतः । किंविशिष्टः? **चतुरावर्तत्रितयः** चतुरो वारानावर्तत्रितयं यस्य । एकैकस्य हि कायोत्सर्गस्य विधाने 'णमो अरहंताणस्य थोस्सामे'-श्चाद्यन्तयोः प्रत्येकमावर्तत्रितयमिति एकैकस्य हि कायोत्सर्गविधाने चत्वार आवर्ता तथा तदाद्यन्तयोरेकैकप्रणामकरणाच्चतुः प्रणामः स्थित ऊर्ध्वं कायोत्सर्गोपेतः । यथाजातो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहचिन्ताव्यावृत्तः। **द्विनिषद्यो** द्वे निषद्ये

रत्नकरण्डश्रावकाचार के प्रमाण

अब वह श्रावक सामायिक गुण से संपन्न होता है, यह कहते हैं—

चतुरावर्तेति—(यः) जो **(चतुरावर्तत्रितयः)** चार बार तीन तीन आवर्त करता है, **(चतुःप्रणामः)** चार प्रणाम करता है, **(स्थितः)** कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, **(यथाजातः)** बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, **(द्विनिषद्यः)** दो बार बैठकर नमस्कार करता है **(त्रियोगशुद्धः)** तीनों योगों को शुद्ध रखता है और **(त्रिसन्ध्यं)** तीनों सन्ध्याओं में **(अभिवन्दी)** वन्दना करता है **(सः)** वह **(सामायिकः)** सामायिक प्रतिमाधारी है।

टीकार्थ— इस श्लोक में सामायिक प्रतिमा का लक्षण बतलाते हुए उसकी विधि का भी निर्देश किया गया है। सामायिक करने वाला पुरुष एक-एक कायोत्सर्ग के बाद चार बार तीन-तीन आवर्त करता है, अर्थात् प्रत्येक दिशा में 'णमो अरहंताणं' इस आद्य सामायिक दण्डक और 'थोस्सामि हं' इस अन्तिम स्तव दण्डक के तीन-तीन आवर्त और एक-एक प्रणाम इस तरह बारह आवर्त और चार प्रणाम करता है। श्रावक इन आवर्तादिक की क्रियाओं को खड़े होकर करता है, सामायिक की अवधि के भीतर यथाजात—नग्नमुद्राधारी के समान बाह्याभ्यन्तर परिग्रह की चिन्ता से दूर रहता है। 'देववन्दना' करने वाले को प्रारम्भ में और समाप्ति में बैठकर प्रणाम करना चाहिये, इस विधि के अनुसार दो बार बैठकर प्रणाम करता है अर्थात् सामायिक प्रारम्भ करने के लिये प्रथम बार कायोत्सर्ग कर तीन आवर्त करता है, उसके बाद बैठकर पृथ्वी में शिर झुकाता हुआ नमस्कार करता है और सामायिक के बाद कायोत्सर्ग करता है, उसके बाद

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार (समन्तभद्र-भारती) पृ. २४१-२४२।

उपवेशने यस्य । देववन्दनां कुर्वता हि प्रारम्भे समाप्तौ चोपविश्य प्रणामः कर्तव्यः । त्रियोगशुद्धः त्रयो योगा मनोवाक्कायव्यापाराः शुद्धा सावद्यव्यापाररहिता यस्य । **अभिवन्दी** अभिवन्दत इत्येवंशीलः । कथं ? त्रिसंध्यं ।।१८।।

जिणवणयधम्मचेइयपरमेट्ठिजिणालयाण णिच्चं पि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामायियं तं खु[१] ।।

भी बैठकर पृथ्वी में शिर झुकाता हुआ नमस्कार करता है। तीनों योगों को शुद्ध रखता है अर्थात् वह सावद्य व्यापार का त्याग करता है और तीनों संध्याओं में वन्दना करता है।

विशेषार्थ— सामायिक प्रतिमा वाले को तीनों संध्यायों—प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल में वन्दना करने की बात कही गई है। समन्तभद्रस्वामी ने **'त्रिसन्ध्यमभिवन्दी'** इस पद के द्वारा यह भाव स्पष्ट किया है और वसुनन्दि आदि आचार्यों ने —

इस गाथा द्वारा लिखा है कि जिनवचन—जिनशास्त्र, जिनधर्म, जिनचैत्य, परमेष्ठी जिनालयों की तीनों काल में जो वन्दना की जाती है उसे सामायिक कहते हैं।

सामायिक करने वाला पुरुष पूर्वादि दिशाओं में खड़ा होकर जो आवर्त तथा नमस्कार करता है वह उन दिशाओं में स्थित जिनप्रतिमाओं तथा चैत्यालय आदि को लक्ष्य करके ही करता है। नमस्कार, प्रदक्षिणा—परिक्रमापूर्वक होता है, इसलिए परिक्रमा की विधि को सम्पन्न करने के लिए तीन-तीन आवर्त करता है अर्थात् दोनों हाथों को कमलमुकुलाकार कर प्रदक्षिणारूप से घुमाता है। इस वन्दना के पहले वह पूर्व या उत्तरदिशा की ओर मुखकर खड़ा होता है और निम्नलिखित सामायिकदण्डक पढ़कर २७ उच्छ्वास[२] में नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ता हुआ कायोत्सर्ग करता है।

१. श्रावक प्रतिक्रमण (श्री गौतम स्वामी कृत)। २. एक बार णमोकार मंत्र में उच्चारण में तीन उच्छ्वास लगते हैं—पहले उच्छ्वास में 'णमो अरहंताणं णमो सिद्धांण' दूसरे उच्छ्वास में 'णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं' और तीसरे उच्छ्वास में 'णमो लोए सव्व साहूणं ' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिये ।

देववन्दना या सामायिक-विधिः

(क्रियाकलाप से[१])

नमः श्रीवीरनाथाय, सम्यग्बोधप्रहेतवे।
सामायिकविधिं वक्ष्ये, पूर्वशास्त्रानुसारतः।।१।।

कृति-कर्म

सामायिक अथवा देववन्दना के समय संयतों और देश-संयतों को कृति-कर्म करना चाहिये। पाप कर्मों को छेदने वाले अनुष्ठान को कृति-कर्म कहते हैं अर्थात् जिन क्रियाओं से पाप कर्मों का नाश हो वह कृति-कर्म है। इस कृतिकर्म के सात भेद हैं। यथा—

योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनति ।
विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत्।।१।।

अर्थात्—योग्य काल, योग्यआसन, योग्यमुद्रा, योग्यआवर्त, योग्यशिर ये सात कृति-कर्म हैं। इसको नग्न-मुद्राधारी संयत, बत्तीस दोष रहित , विनयपूर्वक करे ।।१।।

योग्यकाल

तिस्रोऽह्नोऽन्त्या निशश्चाद्या नाड्यो व्यत्यासिताश्च ताः।
मध्याह्नस्य च षट् कालास्त्रयोऽमी नित्यवन्दने।।२।।

अर्थात्—नित्यवन्दना के तीन काल हैं। पूर्वाह्नकाल, मध्याह्नकाल और अपराह्न काल। ये तीनों काल छह छह घड़ी के हैं। रात्रि की पीछे की तीन घड़ी और दिन की पहिली तीन घड़ी एवं छह घड़ी पूर्वाह्नवन्दना में उत्कृष्ट काल है। दिन की अन्त की तीन घड़ी और रात्रि की पहली तीन घड़ी एवं छह घड़ी अपराह्न वन्दना में उत्कृष्ट काल है तथा मध्य दिन की आदि अन्त की तीन तीन घड़ी एवं छह घड़ी मध्याह्न वन्दना में उत्कृष्ट काल है। इस तरह सन्ध्यावन्दना में छह छह घड़ी उत्कृष्ट काल है।।२।।

योग्य-आसन

वन्दनासिद्धये यत्र येन चास्ते तदुद्यतः।
तद्योग्यासनं देशः पीठं पद्मासनाद्यपि।।३।।

अर्थात्—वन्दना की निष्पत्ति के लिये वन्दना करने को उद्युक्त साधु , जिस देश में, जिस पीठ पर और जिन पद्मासनादि आसनों से बैठता है उसे योग्य आसन कहते हैं।।३।।

---

१. क्रियाकलाप, पृ. १ से ३५ तक।

वन्दनायोग्य-प्रदेश

विविक्तः प्रासुकस्त्यक्तः संक्लेशक्लेशकारणैः।
पुण्यो रम्यः सतां सेव्यः श्रेयो देशः समाधिचित्।।४।।

अर्थात्—विविक्त—जिसमें अशिष्ट जन का संचार न हो , जो प्रासुक—सम्मूर्छन जीवों से रहित हो, संक्लेशकरण-रागद्वेष आदि से और क्लेशकारण—परीषहरूप उपसर्ग से रहित हो, पुण्य—वन, भवन,चैत्यालय,पर्वत की गुफा सिद्धक्षेत्रादि रूप हो, रम्य—चित्त को प्रफुल्लित करने वाला हो , मुमुक्षु पुरुषों के सेवन करने योग्य हो और प्रशस्त ध्यान को बढ़ाने वाला हो ऐसे देश की वन्दना करने वाला साधु वन्दना की सिद्धि के लिये आश्रय ले ।।४।।

वन्दनायोग्य-पीठ

विजन्त्वशब्दमच्छिद्रं सुखस्पर्शमकीलकम् ।
स्थेयस्तार्णाद्यधिष्ठेयं पीठं विनयवर्धनम् ।।५।।

अर्थात्—जो खटमल आदि प्राणियों से रहित हो, चर चर शब्द न करता हो, जिसमें छेद न हो, जिसका स्पर्श सुखोत्पादक हो, जिसमें कील कांटा वगैरह न हो, जो हिलता-डुलता न हो, निश्चल हो ऐसे तृणमय दर्भासन चटाई वगैरह, काष्ठमय—चौकी, तखत आदि, शिलामय—पत्थर की शिला जमीन आदि रूप पीठ की वन्दना करने वाला साधु वन्दना सिद्धि के लिये आश्रय ले अर्थात् तृणरूप, काष्ठरूप और शिलारूप पीठ पर बैठ कर नित्यवन्दना करे ।।५।।

वन्दनायोग्य पद्मासनादि

पद्मासनं श्रितौ पादौ जंघाभ्यामुत्तराधरे।
ते पर्यंकासनं न्यस्तावूर्वोर्वीरासनं क्रमौ।।६।।

अर्थात्—दोनों जंघाओं (गोड़ों) से दोनों पैरों के संश्लेष को पद्मासन कहते हैं अर्थात् दाहिने गौड़ के नीचे बायें पैर को करना और बाएँ गोड़ के नीचे दाहिने पैर को करना अथवा बाएँ पैर के ऊपर दाहिने गौड़ को करना और दाहिने पैर के ऊपर वायें गौड़ का करना सो पद्मासन है। जंघाओं को ऊपर नीचे रखने को पर्यंकासन कहते हैं अर्थात् वायें गौड़ के ऊपर दाहिने गौड़ केा रखना सो पर्यंकासन है। दोनों उरु (जांघों) के ऊपर दोनों पैरों के रखने को वीरासन कहते हैं अर्थात् वायां पैर दाहिनी जांघ के ऊपर रखना और दाहिना पैर वायीं जाघं के ऊपर रखना सो वीरासन है।।६।।

वन्दनायोग्य स्थान

स्थीयते येन तत्स्थानं वन्दनायां द्विधा मतम् ।
उद्भीभावो निषद्या च तत्प्रयोज्यं यथाबलम्।।७।।

अर्थात्—वन्दना करने वाला जिससे खड़ा रहे या बैठे वह स्थान है सो वन्दना में दो प्रकार का माना गया है। एक उद्भीभाव (खड़ा रहना) दूसरा निषद्या (बैठना) । इन दोनों स्थानों में से अपनी शक्ति के अनुसार किसी एक का प्रयोग करना चाहिये ।।७।।

वन्दनायोग्य-मुद्रा

मुद्रा के चार भेद हैं। जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा और मुक्ताशुक्तिमुद्रा । इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिन-मुद्रा

जिनमुद्रान्तरं कृत्वा पादयोश्चतुरङ्गुलम् ।
ऊर्ध्वजानोरवस्थानं प्रलम्बितभुजद्वयम् ।।८।।

अर्थात्—दोनों पैरों का चार अंगुलप्रमाण अन्तर (फासला) रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटका कर कायोत्सर्ग रूप से खड़ा होना सो जिनमुद्रा है।।८।।

योगमुद्रा

जिनाः पद्मासनादीनामङ्कमध्ये निवेशनम् ।
उत्तानकरयुग्मस्य योगमुद्रां बभाषिरे।।९।।

अर्थात्—पद्मासन, पर्यङ्कासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्रदेव योगमुद्रा कहते हैं।।९।।

वन्दनामुद्रा

मुकुलीकृतमाधाय जठरोपरि कूर्परम् ।
स्थितस्य वन्दनामुद्रा करद्वन्द्वं निवेदिता ।।१०।।

अर्थात्—दोनों हाथों को मुकुलित कर और उनकी कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के वन्दना मुद्रा होती है।

भावार्थ—दोनों कुहनियों को पेट पर रखकर दोनों हाथों को मुकुलित करना सो वन्दना मुद्रा है।।१०।।

मुक्ताशुक्तिमुद्रा

मुक्ताशुक्तिर्मता मुद्रा जठरोपरि कूर्परम्।
ऊर्ध्वजानोः करद्वन्द्वं संलग्नङ्गुलि सूरिभिः।।११।।

अर्थात्—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को आचार्य मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं।

भावार्थ—दोनों कुहनियों को पेट पर रखना और दोनों हाथों को जोड़ कर अंगुलियों को मिला लेना मुक्ताशुक्तिमुद्रा है।।११।।

मुद्राओं का प्रयोगनिर्णय

स्वमुद्रा वन्दने मुक्ताशुक्तिः सामायिकस्तवे ।
योगमुद्रास्यया स्थित्या जिनमुद्रा तनूज्झने ।।१२।।

अर्थात्—"जयति भगवान्" इत्यादि चैत्यवन्दना करते समय वन्दनामुद्रा का प्रयोग करना चाहिये । "णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिकदण्डक के समय और "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशतिस्तवदंडक के समय मुक्ताशुक्ति मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये । बैठकर कायोत्सर्ग करते समय योगमुद्रा का प्रयोग करना चाहिये तथा खड़े रह कर कायोत्सर्ग करते समय जिनमुद्रा का प्रयोग करना चाहिये ।।१२।।

आवर्त का स्वरूप

कथिता द्वादशावर्ता वपुर्वचनचेतसाम्।
स्तवसामायिकाद्यन्तपरावर्तनलक्षणाः।।१३।।

अर्थात्—मन, वचन और काय के पलटने को आवर्त कहते हैं। ये आवर्त बारह होते हैं जो सामायिकदण्डक के प्रारम्भ और समाप्ति में तथा चतुर्विंशतिस्तवदण्डक के प्रारम्भ और समाप्ति के समय किये जाते हैं। जैसे-"णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दण्डक के पहले क्रिया विज्ञापनरूप मनोविकल्प होता है उस मनोविकल्प को छोड़कर सामायिकदंडक के उच्चारण के प्रति मन को लगाना सो मनःपरावर्तन है। उसी सामायिकदंडक के पहले भूमिस्पर्शनरूप नमस्कार किया जाता है उस वक्त वन्दनामुद्रा की जाती है उस वन्दनामुद्रा को त्यागकर पुनः खड़ा होकर मुक्ताशुक्तिमुद्रा रूप दोनों हाथों को करके तीन बार घुमाना सो कायपरावर्तन है। "चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि" इत्यादि उच्चारण को छोड़कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि पाठ का उच्चारण करना सो वाक्परावर्तन है। इस तरह सामायिक दण्डक के पहले मन, काय और वचन परावर्तनरूप तीन आवर्त होते हैं। इसी तरह सामायिकदण्डक के अन्त में और स्तवदण्डक के आदि

तथा अन्त में तीन-तीन आवर्त यथायोग्य होते हैं। एवं सब मिलकर एक कायोत्सर्ग में बारह आवर्त होते हैं।।१३।।

त्रिः सम्पुटीकृतौ हस्तौ भ्रमयित्वा पठेत्पुनः।
साम्यं पठित्वा भ्रमयेत्तौ स्तवेऽप्येतदाचरेत् ।।१४।।

अर्थात्—मुकुलित दोनों हाथों को तीन बार घुमाकर सामायिकदंडक पढ़े । पढ़कर फिर तीन बार घुमावे। चतुर्विंशतिस्तवदण्डक में भी इसी तरह करे । अर्थात् - मुकुलित दोनों हाथों को तीन बार घुमा कर चतुर्विंशतिस्तव दण्डक पढ़े । पढ़कर फिर मुकुलित दोनों हाथों को तीन बार घुमावे ।।१४।।

शिर-लक्षण

प्रत्यावर्तत्रयं भक्तया नन्नमत् क्रियते शिरः।
यत्पाणिकुड्मलाङ्के तत् क्रियायां स्याच्चतुः शिरः ।।१५।।

अर्थात्—तीन तीन आवर्त के प्रति जो भक्तिपूर्वक शिर झुकाना है वह चार शिर है। मुकुलित हाथ इसका चिन्ह है और ये चार शिर चैत्यभक्त्यादि कायोत्सर्ग के समय किये जाते हैं।

भावार्थ—सामायिकदण्डक के आदि में तीन आवर्त कर शिर झुकाना। अन्त में तीन आवर्त कर शिर झुकाना। इसी तरह स्तवदण्डक के आदि में तीन आवर्त कर शिर झुकाना और अन्त में भी तीन आवर्त कर शिर झुकाना एवं एक कायोत्सर्ग के प्रति चार शिरोनमन होते हैं।।१५।।

चैत्यभक्ति आदि में दूसरी तरह से भी आवर्त होते हैं सो दिखाते हैं—

प्रतिभ्रामरि वार्चादिस्तुतौ दिश्येकशश्चरेत् ।
त्रीनावर्तान् शिरश्चैकं तदाधिक्यं न दुष्यति ।।१६।।

अर्थात्—चैत्यभक्त्यादि के करते समय हर एक प्रदक्षिणा में एक एक दिशा में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनमन करे ।

भावार्थ—एक प्रदक्षिणा देने में चारों दिशाओं में बारह आवर्त और चार शिरोनमन होते हैं इसी तरह दूसरी तीसरी प्रदक्षिणा में तीन तीन आवर्त और चार चार शिरोनमन होते हैं एवं ये आवर्त और शिरोनमन पूर्वोक्त प्रमाण से अधिक हो जाते हैं सो दोष के लिये नहीं हैं।।१६।।

नति

द्वे साम्यस्य स्तुतेश्चादौ शरीरनमनान्नती ।
वन्दनाद्यन्तयोः कैश्चिन्निविश्य नमनान्मते ।।१७।।

अर्थात्-सामायिकदण्डक और स्तुतिदण्डक के पहले भूमिस्पर्शरूप पंचांगप्रणाम करने से दो नति की जाती हैं। कोई-कोई आचार्य वन्दना के पहले और पीछे बैठकर प्रणाम करने से दो नती मानते हैं।

भावार्थ—सामायिकदण्डक के पहले और चतुर्विंशतिस्तवदण्डक के पहले दो बार पंचांगप्रणाम किया जाता है इसलिये दो नती होती हैं। स्वामि समन्तभद्रादिक का मत है कि वन्दना के प्रारम्भ में एक और समाप्ति में एक ऐसे दो प्रणाम बैठकर करना चाहिये इसलिये उनके मत से ये दो नती होती हैं।।१७।।

इति कृतिकर्म

देववन्दना प्रयोग विधि

त्रिसन्ध्यं वन्दने युञ्ज्याश्चैत्यपंचगुरुस्तुती।
प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धये ।।१।।

तथा—

जिणदेववन्दणाए चेदियभत्ती य पञ्चगुरुभत्ती ।।१/२।।
ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिका ।।१/२।।

तीनों सन्ध्या सम्बन्धी जिनवन्दना में चैत्यभक्ति और पञ्चगुरुभक्ति तथा सभी बृहद्भक्तियों के अन्त में वन्दनापाठ की हीनाधिकता रूप दोषों की विशुद्धि के लिये प्रियभक्ति—समाधिभक्ति करना चाहिये ।

इस देववन्दना में छह प्रकार का कृतिकर्म भी होता है। यथा—

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम्।।२।।

तथा—

आदाहीणं, पदाहिणं, तिक्खुत्तं, तिऊणदं, चदुस्सिरं वारसावत्तं, चेदि ।

(१) वन्दना करने वाले की स्वाधीनता, (२) तीन प्रदक्षिणा, (३) तीन भक्ति सम्बन्धी तीन कायोत्सर्ग (४) तीन निषद्या—ईर्यापथ कायोत्सर्ग के अनन्तर बैठ कर आलोचना करना और चैत्यभक्ति संबंधी क्रिया विज्ञापन करना १, चैत्यभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना और पञ्चमहागुरुभक्ति संबंधी क्रिया विज्ञापन करना २, पञ्चमहागुरुभक्ति के अन्त में बैठ कर आलोचना करना , (५) चार शिरोनति, (६) और बारह आवर्त । यही सब आगे बताया गया है ।

देववन्दना-प्रयोगानुपूर्वी

(सामायिक विधि)

देववन्दना[१] के लिये श्रीजिनमंदिर को जावें, वहाँ उचित स्थान में बैठकर दोनों हाथों और दोनों पैरों को धोवें । अनन्तर—

"निःसही निःसही निःसही"

ऐसा तीन बार उच्चारण कर चैत्यालय में प्रवेश करें वहां जिनेन्द्रदेव के मुख का अवलोकन कर तीन बार प्रणाम करें । अनन्तर **"दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि"** इत्यादि दर्शन-स्तोत्र को वन्दना मुद्रा जोड़कर पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवें। प्रत्येक दिशा में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करते जावें ।

अनन्तर[२] खड़े रह कर, दोनों पैरों को समान कर, चार अँगुल का अन्तर रख कर और दोनों हाथों को मुकुलित कर नीचे लिखा **"ऐर्यापथिक"**[३] दोषविशुद्धिपाठ" पढ़े ।

—ईर्यापथविशुद्धि : —

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते, अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, वेइंदिया वा, ते-इंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं, तस्स विसोहिकरणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

हे भगवन्! ईर्यापथसंबंधी प्राणियों की विराधना होने पर किये हुये दोषों का निराकरण करता हूँ। मेरे मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से रहित होते हुए, शीघ्र

---

१. श्रुतदृष्ट्यात्मनि स्तुत्यं पश्यन् गत्वा जिनालयम् ।
कृतद्रव्यादिशुद्धिस्तं प्रविश्य निःसहीगिरा ।।१।।
चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्बाष्पस्त्रिरानतः ।
परीत्य दर्शनस्तोत्रं वन्दनामुद्रया पठन् ।।२।।

२. कृत्वेर्यापथसंशुद्धि.....।

३. प्रतिक्रम्य पृथग्गाथां द्विद्वयेकाशान्तरेचकाम् ।
नव कृत्वः स्थितो जप्त्वा निषद्यालोचयाम्यहम् ।।

चलने में, प्रथम ही स्वस्थान से निकलने में, ठहरने में, गमन करने में, सिकोड़ने-पसारने रूप पैरों के हिलाने चलाने में, श्वासोच्छ्वास लेने में अथवा दो इन्द्रिय आदि प्राणों के ऊपर प्रमाद पूर्वक चलने में, बीजों के ऊपर होकर चलने में, हरितकाय पर होकर चलने में, मल-मूत्र के प्रक्षेपण करने , थूकने, श्लेष्म-कफ डालने, कमण्डलु आदि उपकरण के रखने में जो मैंने एकेन्द्रिय जीवों को, दो इन्द्रिय जीवों को, तीन इन्द्रिय जीवों को, चार इन्द्रिय जीवों को, तथा पंचेन्द्रिय जीवों को, अपने-अपने स्थान पर जाते हुए को रोका हो, अपने इष्ट स्थान से उठाकर अन्य स्थान में क्षेपण किया हो, परस्पर में संघट्टन पीड़ा पहुँचाई हो, उनका एक जगह पुञ्ज किया हो, मारा हो, सन्ताप पहुंचाया हो, खण्ड खण्ड किया हो, मूर्छित (बेहोश) किया हो, कतरा हो, विदारा हो, ये जीव अपने स्थान में ही स्थित हों अथवा अपने स्थान से दूसरे स्थान को जाते हों उस समय इनकी उक्त प्रकार से उक्त स्थानों में विराधना की हो तो जब तक मैं भगवत् अर्हंतो को—प्रतिक्रमण का उत्तर गुण स्वरूप अर्थात् किये हुये दोषों को निराकरण करने का कारण होने से उत्कृष्ट, जीवों की विराधना से उत्पन्न हुए दोषों को दूर करने वाला और जीवों की विराधना से उपार्जन किये हुये दुष्कृत्यों से शुद्ध करने वाला ऐसा नमस्कार करूँ तब तक जिससे पाप का उपार्जन होता है, जिससे दुराचार सेवन किये जाते हैं ऐसे काय का त्याग करता हूँ अर्थात् तब तक इससे ममत्वभाव छोड़ता हूँ ।

इस तरह प्रतिक्रमण पढ़ कर **"णमो अरहंताणं"** इत्यादि गाथा का सत्ताईस उच्छवासों में नौ बार खड़े खड़े जाप्य देवें । अनन्तर पर्यंकासन से बैठकर नीचे लिखा **"आलोचना पाठ"** पढ़ें ।

—आलोचना —

ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादा-देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा, मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ।।१।।

इच्छामि भंते ! आलोचेउं इरियावहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिमचउदिस-विदिसासु विरहमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा । पमाददोषेण डवडव-चरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ईर्यामार्ग में चलते हुए मैंने यदि प्रमाद से आज युग—चार हाथ प्रमाण भूमि न देखकर एकेन्द्रिय आदि जीव निकाय को पीड़ा पहुँचाई हो तो मेरा यह दुरित—पापाचरण गुरुभक्ति द्वारा मिथ्या हो ।

हे भगवन्! ईर्यापथ संबंधी प्रमाद-दोष की निन्दा और गर्हारूप आलोचना करने

की इच्छा करता हूँ । पूर्व, उत्तर, दक्षिण, और पश्चिम इन चार दिशाओं में वायव्य, ईशान, नैर्ऋत और आग्नेय इन चार ही विदिशाओं में विहार करते हुए भव्य को चार हाथ प्रमाण भूमि देख कर चलना चाहिये किन्तु प्रमादवश अत्यन्त जल्दी-जल्दी ऊँचे को मुख किये हुये इधर उधर गमन करने के कारण विकलेन्द्रिय प्राणों का, वनस्पतिकायिक भूतों का, पंचेन्द्रिय जीवों का तथा पृथिवी जल आदि सत्वों का उपघात किया हो, औरों से कराया हो, करते हुए को अच्छा माना हो, तो उसे उपघात से जायमान मेरा दुष्कृत मिथ्या हो — निष्फल हो ।

अनन्तर [१]उठकर गुरु को अथवा देव को पंचांग नमस्कार करें पुनः गुरु के समक्ष अथवा गुरु दूर हो तो देव के समक्ष बैठ कर कृत्य विज्ञापन करें कि —

नमोऽस्तु भगवन् ! देववन्दनां करिष्यामि ।

अनन्तर पर्यंकासन से बैठकर नीचे लिखा मुख्य मंगल पढ़े —

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ।।१।।
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम्।।२।।

जिनको अनन्त चतुष्टयरूप आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो चुकी है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष लक्षण सम्पूर्ण भव्यार्थ की निष्पत्ति के उत्तम कारण हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतिपादन करने वाले हैं, जिनके चरण-कमल की किरणरूप केशर देवेन्द्रों के मुकुट में आश्लिष्ट है — लगी हुई है, जो तीन लोक के भव्य प्राणियों के पाप का नाश करने वाले हैं उन चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर को प्रणाम करता हूँ।

[२]अनंतर बैठे बैठे ही नीचे लिखा पाठ पढ़ कर सामायिक स्वीकार करें ।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ।।१।।
रायबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ।।२।।
हा दुट्ठकयं हा दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतोअंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ।।३।।

१. .....मालोच्यानम्रकांघ्रिदोः।
नत्वाश्रित्य गुरोः कृत्यं पर्यंकस्थोऽग्रमंगलम्।।३।।

२. उक्त्वात्तसाम्यो.....।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकाएण पडिकमणं।।४।।
समता सर्वभूतेषु सयंमः शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं ।।५।।

मैं सम्पूर्ण जीवों को क्षमा करता हूँ , सब जीव मुझे क्षमा करें, मेरा किसी के साथ वैर-भाव नहीं है इसलिए सब प्राणियों के साथ मेरा मैत्री-भाव है।।१।। राग, द्वेष, हर्ष, दीनता, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति इन सब का मैं त्याग करता हूँ ।।२।। हा! मैंने कोई दुष्ट कार्य किया हो, दुष्ट चिन्तवन किया हो, तथा दुष्ट वचन बोले हों, तो मैं भगवान् अर्हंत के समक्ष निवेदन करता हुआ पश्चात्ताप पूर्वक अपने मन ही मन में दग्ध होता हूँ अर्थात् अपनी निन्दा करता हूँ ।।३।। मैं निन्दा और गर्हा से युक्त हुआ मन, वचन और काय की क्रिया से द्रव्य, क्षेत्र , काल, और भाव के विषय में किये गये अपराध का शोधनरूप प्रतिक्रमण करता हूँ ।।४।। सभी प्राणियों में समता भाव रखना, संयम पालना, शुभ भावना भाना, आर्त और रौद्रध्यानों का परित्याग करना सो सब सामायिक है।।५।।

[१]**अथ कृत्यविज्ञापना —**

भगवन्नमोऽस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादा वंदिष्येऽहं, एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद्विरतोऽस्मि ।

भगवन् ! नमस्कार हो, प्रभुपाद प्रसन्न होवें मैं वन्दना करूँगा, यह मैं सर्व सावद्ययोग से विरक्त होता हूँ । अनन्तर नीचे लिखा क्रिया विज्ञापन करें ।

अथ पौर्वाण्हिकं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

अब प्रातः काल सम्बन्धी पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिये भाव पूजा, वन्दना और स्तव सहित चैत्यभक्ति और तत्संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ । (यह प्रथम बार बैठना है)

इस तरह कृत्यविज्ञापना कर [२]खड़े होकर भूमि-स्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करें पश्चात् जिनप्रतिमा के सन्मुख चार अंगुल प्रमाण दोनों पैरों का अन्तर कर खड़े होवें । तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् मुक्ता-शुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़ कर नीचे लिखा सामायिक दण्डक पढ़े । पहले उच्छ्वास में अर्हंत-सिद्ध मंत्र का, दूसरे में

१. .....विज्ञाप्य क्रिया.....

२. .....मुत्थाय विग्रहं।
प्रह्वीकृत्य, त्रिभ्रमैकशिरोवनतिपूर्वकम्।।४।।
मुक्ताशुक्त्यंकितकरः पठित्वा साम्यदण्डकम्।

आचार्य-उपाध्याय मन्त्र का और तीसरे में सर्व-साधु मन्त्र का स्वश्रवणगोचर जिसे दूसरा न सुन सके इस तरह एक बार उच्चारण कर पश्चात् चत्तारि-दण्डक स्तोत्र को समीपस्थ मनुष्य के कानों को मनोहर मालूम पड़े ऐसी सुरीली आवाज से पढ़ें। तद्यथा-

सामायिक दंडक

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं (१) णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं (२) णमो लोए सव्व साहूणं (३) ।।१।।

चत्तारि मंगलं — अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । **चत्तारि लोगत्तमा —** अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा , केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । **चत्तारि सरणं पव्वज्जामि —** अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ।

अढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं, णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं ।

करेमि भंते ! सामाइयं (देववन्दनां) सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं (जावन्नियमं) तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि, णिंदामि गरहामि अप्पाणं , जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

चार घातिया कर्मों से रहित , अनन्तचतुष्टय सहित, आठ प्रातिहार्य युक्त , समवशरणादिविभूतिसमन्वित, परम औदारिक शरीर के धारक, हितोपदेशी, सर्वज्ञ, वीतराग अरहंतों को , आठ कर्मों से रहित , आठ गुणों सहित सिद्धों को, पंचाचार का स्वयं पालन करने वाले, औरों को पालन कराने वाले छत्तीस गुण समन्वित आचार्यों को, बारह अंग और चौदह पूर्व का अध्ययन और अध्यापन करने-कराने वाले,स्वयं शुद्ध व्रतों से युक्त उपाध्यायों को, अट्ठाईस मूल गुणों से युक्त, मोक्ष पथका साधन करने वाले लोकवर्ती सम्पूर्ण साधुओं को नमस्कार करता हूँ ।

अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चार मंगल रूप हैं — पाप कर्मों को नाश करने वाले और सुख को देने वाले हैं। अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चारों, लोक में उत्तम हैं अर्थात् उत्तम गुणों से युक्त हैं और भव्यों को उत्तम पद की प्राप्ति के कारण हैं। अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारों की शरण को पाप्त होता हूँ अर्थात् ये दुर्जय कर्मरूप शत्रुओं से जायमान दुःखरूप समुद्र से भव्य

जीवों को तारने वाले हैं इसलिए इन चारों की शरण ग्रहण करता हूँ ।

अढ़ाई द्वीप, दो समुद्र और पन्द्रह कर्मभूमियों में जितने भगवान् , आदितीर्थ के प्रवर्तक, तीर्थंकर, जिन, जिनोत्तम केवलज्ञानी अर्हंत हैं उन सब का क्रिया कर्म करता हूँ। सम्पूर्ण अर्थों को जानते हैं इसलिए बुध, सुख स्वरूप हैं इसलिए परिनिर्वत, अशेष कर्म जनित संसार का अन्त करने वाले अथवा एक एक तीर्थंकर के काल में दुर्धर उपसर्ग को प्राप्त कर एक अन्तर्मूहूर्त में घातिया कर्मों को नाश केवलज्ञान उत्पन्न कर और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्धपद प्राप्त करने वाले दश-दश अन्तकृत , संसार समुद्र को पार करने वाले इसलिए पारंगत ऐसे जितने सिद्ध हैं उन सब का क्रिया कर्म करता हूं । तथा धर्म का आचरण करने वाले आचार्यों का, धर्म के उपदेशक उपाध्यायों का और धर्म के नायक सब साधुओं का क्रिया कर्म करता हूं । एवं धर्मरूप चतुरंग सेना के अधिपति चतुर्णिकाय देवों द्वारा वन्दनीय अतएव देवाधिदेव ऐसे अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं का तथा ज्ञान, दर्शन, और चारित्र इन तीन मुख्य गुणों का क्रिया कर्म करता हूं।

हे भगवन् ! सामायिक (देववन्दना) करूँगा, सम्पूर्ण सावद्य योग-पाप कर्मों का त्याग करता हूँ । जब तक जीऊँ (नियम है) तब तक तीन प्रकार — मन से, वचन से और काय से सावद्य योग न करूँगा , न कराऊँगा और न करते हुए को अच्छा मानूँगा । अर्हंत आदिक क्रिया कर्म-सबंधी अतीचारों का त्याग करता हूँ । आत्मसाक्षिपूर्वक निन्दा करता हूँ तथा गुरु आदि की साक्षिपूर्वक गर्हा करता हूँ । इतना ही नहीं किंतु जब तक भगवान् अर्हंत देवों का पर्युपासन करूँगा तब तक जिनसे पाप-कर्मों का उपार्जन होता है ऐसे दुराचारों का भी त्याग करता हूं ।

(इस प्रकार उक्त सामायिक दण्डक पढ़कर पुनः तीन[१] आवर्त और एक शिरोनति करें । पश्चात् जिनमुद्रा जोड़कर कायोत्सर्ग करें । जिसमें "णमो अरहंताणं" इत्यादि मंत्र का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार पूर्वोक्त विधि के अनुसार जाप देवें या चिंतवन करें।

अनन्तर भूमिस्पर्शनात्मक[२] पंचांग नमस्कार करें पश्चात् पूर्वोक्त विधि से खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर नीचे लिखा 'चतुर्विंशतिस्तव" पढ़े । तद्यथा-

चतुर्विंशतिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ।।१।।

---

१. कृत्वावर्तत्रयशिरोनती भूयस्तनुं त्यजेत्।।५।।
२. प्रोच्य प्राग्वत्ततः साम्यस्वामिनां स्तोत्रदण्डकम्।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ।।२।।
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ।।७।।
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।८।।

जो देश जिन ऐसे गणधर आदि से श्रेष्ठ हैं, अनंत संसार को जिनने जीत लिया है अथवा जो केवलज्ञान युक्त अनन्तजिन हैं, मनुष्यों में उत्कृष्ट लोक जो चक्रवर्ती आदि उनके द्वारा जो पूज्य हैं, जिसने ज्ञानावरण और दर्शनावरणरूप मल को नष्ट कर दिया है, जो पूज्यता को प्राप्त हुए हैं अथवा महाप्राज्ञ हैं ऐसे तीर्थंकरों का स्तवन करता हूँ ।।१।। जो केवलज्ञान द्वारा लोक का प्रकाश करने वाले हैं, उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्मरूप तीर्थ के कर्ता हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं अथवा केवलज्ञान से समन्वित हैं ऐसे चतुर्विंशति अर्हंतों का वन्दनापूर्वक निज-निज नाम सहित कीर्तन करूँगा ।।२।। ऋषभ , अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, और चन्द्रप्रभ जिनको वन्दना करता हूँ ।।३।। सुविधि द्वितीय नाम पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान्, वासुपुज्य, विमल, अनंत, धर्म और शन्ति भगवान् को वन्दना करता हूं ।।४।। तथा कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरेन्द्र को वन्दना करता हूँ ।।५।। इस तरह मेरे द्वारा स्तवन किये गये, रजोमल से रहित , जरा और मरण से हीन तथा देशजिनों में श्रेष्ठ चौबीस तीर्थंकर मुझ स्तुतिकर्त्ता पर प्रसन्न होवें ।।६।। वचनों से कीर्तन किये गये, मन से वंदना किये गये और काय से पूजे गये ऐसे ये लोकोत्तम कृतकृत्य जिनेन्द्र मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रदान करें।।७।। सम्पूर्ण आवरणों के नष्ट हो जाने से चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल, सम्पूर्ण लोक का

उद्योत करने वाले केवलज्ञानरूप प्रभा से समन्वित होने से सूर्य से भी अधिक प्रभासमान, तथा अलक्षमाण गुणरूप रत्नों से परिपूर्ण होने से सागर के समान गंभीर ऐसे सिद्ध परमात्मा मुझ स्तवक को सर्व कर्म विप्रमोक्षरूप सिद्धि देवें।।८।।

अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। इस तरह एक कायोत्सर्ग में दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनति हुए। सामायिक दण्डक के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन, अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनमन तथा चतुर्विंशतिस्तव के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन और अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनमन एवं बारह आवर्त और चार शिरोनमन तथा सामायिक दण्डक के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन के पहले 'अथ पौर्वाण्हिक' इत्यादि क्रिया विज्ञापन कर खड़े होने के पीछे एक पंचांग भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार तथा चतुर्विंशतिस्तव दण्डक के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन के पहले तथा कायोत्सर्ग के अनन्तर एक पंचांग नमस्कार एवं दो प्रणाम एक कायोत्सर्ग में हुए।

अनन्तर[१] तीन प्रदक्षिणा देते हुए और प्रति दिशा में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति करते हुए नीचे लिखी हुई **चैत्यवन्दना** पढ़ें । तद्यथा—

चैत्यभक्ति

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताःपरस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

अर्थ—जो सुवर्णमय कमलों पर सामान्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार—गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई छाया-मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित-स्पर्शित हैं ऐसे जिनके चरणों में आकर कलुष हृदय वाले , अहंकार से युक्त, परस्पर वैरी ऐसे सर्प नौला आदि जीव अपने-अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें ।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गीभावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

अर्थ—अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि

१. वन्दनामुद्रया स्तुत्वा चैत्यानि त्रिप्रदक्षिणम्।।६।।

पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से, मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे जयमान क्लेशों से छुड़ाता है। तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नयकी प्रधानता लेकर अङ्ग पूर्व आदि रूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोषरहित रचा गया ऐसा उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप से अथवा अङ्ग पूर्व और अंग बाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत संसार से रक्षा करे ।।२।।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

अर्थ— अनन्तर जिनेन्द्र का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सात भंगरूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीयरूप द्वार को अंतराय-रूप आगल से रहित उद्घाटन कर ज्ञानदर्शनावरणरूप रज से रहित व्याधि अथवा जरा- मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को देवे ।।३।।

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

अर्थ- सम्पूर्ण जगत् द्वारा वन्दनीय सब अर्हंतों को , सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को और सब साधुओं को नमस्कार हो ।।४।।

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ।।५।।

अर्थ-जो मोह, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोष रूप शत्रुओं के घातक हैं जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरणरूप रज को नष्ट कर दिया है, तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को नमस्कार हो ।।५।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

अर्थ- क्षमा, आर्जव, मादर्व, शौच, आदि गुणों का समुदाय जिसकी उत्पत्ति में साधन है। जो सम्पूर्ण लोक के हित का कारण है और शुभ धाम जो निर्वाण उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्रोक्त धर्म को वन्दता हूँ ।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिरमितगमयोगि ।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

अर्थ-जो मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित लोक का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुतज्ञान का जनक होने से संबंधी है। आचारादि अङ्गों और पूर्व वस्तु आदि उपांगों से युक्त है। तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैन वचन को सदा वन्दना करता हूँ ।।७।।

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि ।
त्रिजगदभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

अर्थ— भवनवासी देवों, कल्पवासी देवों,ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् कर वन्दनीय जिनेन्द्रदेव की जितनी भर प्रतिमा हैं उन सबको मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ ।।८।।

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै विभावानामालयालीस्ताः ।।९।।

अर्थ—जिनका संसारपरिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीन भुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय-मन्दिर की पंक्तियों को भी संसाररूप अग्नि की शांति के लिये वन्दना हूं ।।९।।

इति पंच महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

अर्थ—इस तरह वंदना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें ।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

अर्थ—तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थित, और मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को प्रणमन करता हूँ ।।११।।

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ।।१२।।

अर्थ—जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनका शरीर—यष्टि प्रभामंडल से दैदीप्यमान है ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ ।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्याप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

अर्थ — जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति कर अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिये वन्दता हूँ ।।१३।।

कथयंति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

अर्थ — उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय का अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिये नमस्कार करता हूँ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन ।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

अर्थ — तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे ।।१५।।

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ।।१६।।

अर्थ — सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञानरूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिये कीर्तन करूँगा ।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः ।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

अर्थ — मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परम गति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें ।।१७।।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च ।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ।।१८।।

अर्थ — इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिंब हैं उन

सबको विभूति के लिए वंदता हूँ ।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः ।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे ।।१९।।

अर्थ — व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः ।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ।।२०।।

अर्थ — अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनकों मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये ।।२१।।

अर्थ — जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबंधी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२१।।

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।

अर्थ — इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्त्रवों को रोकने वाली होवे ।।२२।।

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारणमतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ।।२३।।
लोकालोकसुतत्त्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान -
प्रत्यहवहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम् ।।२४।।
शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमितिगुप्ति-सिकतासुभगम्।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्रं सर्वदया -विकचकुसुमविलसल्लतिकम्
दुःसहषरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम् ।
अत्यस्तमोह-कर्दममतिदूरनिरस्तमरण-मकरप्रकरम् ।।२७।।

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधि-पुलिनं सास्रवसंवरणनिर्जरानिस्रवणम् ।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ।।२८।।
अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं ।
व्यवहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगभीरम् ।।३०।।

अर्थ- जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजनरूप तीर्थ यात्रियों के पाप कर्म के प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण है, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है, जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवलज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान हो प्रतिदिन बहते हुये प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं, जो शुक्ल ध्यानरूप स्थित ऐसे दीप्त राजहंसों कर शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्तिरूप सिकता (बालू) से सुशोभित है, जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त-लहरें हैं, सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल है, दुःसह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर-उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, कषायरूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोषरूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप कीचड़ का अभाव है, मरणरूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है, ऋषिश्रेष्ठ गणधरदेवादिकों कर बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना भांति के तपोनिधि-मुनि ही किनारा है, जो आते हुए कर्मरूप जल के संवरण और आए हुए कर्मरूप जल के निःस्त्रवण से मुक्त है, जिसमें गणधर , चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुंडरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है, परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों करके न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है ऐसा अर्हंतरूप महानद का उत्तम तीर्थ पापमल का प्रक्षालनरूप स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण—नाश करे ।।२३-३०।।

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः।
विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ।।३१।।

निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः ।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्,
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ।।३२।।
मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।
हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते ।।३४।।
तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि -
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र ! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः ।।३५।।

अर्थ— हे भगवन् जिनेन्द्र ! सम्पूर्ण कोपरूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयनरूप उत्पलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्षरूप वाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजातरूप में आपका मुख आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है। हे भगवन् ! आपका रूप राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुररूप है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है, तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए भी तृप्तिमान् है। आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं। जितने केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं हैं, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध का उदय है। आपका यह रूप सूर्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त- चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है। आपके रूप को

देखकर मोक्ष के परिपंथी शत्रु ऐसे प्रबल राग, मोह आदि दोषों से कलंकित मनवाला जन-समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत् में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्कालीन उदयापन्न निर्मल चन्द्रमा के समान दीखता है , देवेन्द्रों के नमस्कार प्रवण मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित हैं ऐसा वह यह आपका रूप, जैनमत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरु रूप राग-द्वेष, मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे ।।३१-३५।।

अनन्तर[१] चैत्य के सन्मुख बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें ।

आलोचना या अंचलिका

इच्छामि भंते ! चेइयभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय-वाण-विंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

अर्थ— हे भगवन्! चैत्यभक्ति और तत् संबंधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधि से और दिव्य अभिषेक से सदा अर्चते हैं पूजते हैं वन्दते हैं नमस्कार करते हैं मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चता हूँ पूजता हूँ वन्दता हूँ नमस्कार करता हूँ , मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनगुणसंपत्ति हो ।

अनन्तर[२] बैठे बैठे ही नीचे लिखा कृत्य विज्ञापन करें।

अथ पौर्वाण्हिकं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तव-समेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

१. आलोच्य.....।

२. .....पूर्ववत्पंचगुरून्नुत्वा स्थितस्तथा।

अब प्रातःकाल संबंधी पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिये भावपूजावन्दनास्तव सहित पंचमहागुरुभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ।

अनन्तर उठ कर पंचांग नमस्कार करें । पश्चात् भगवान् के सन्मुख पहिले की तरह खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़ कर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर पूर्वोक्त "सामायिक दंडक" पढ़ें । अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें । कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। अनन्तर भगवान् के सन्मुख पूर्वोक्तरीति से खड़े होकर नीचे लिखी पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।

पंचमहागुरुभक्ति

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया ।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ।।१।।

अर्थ— जिनके सिर पर मनुष्य, धरणेन्द्र और सौधर्मादि देव तीन छत्र लगाये खड़े रहते हैं, जो गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण इन पंचकल्याणक संबंधी सुखों को प्राप्त हुए हैं। जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तध्यान-सुख,और अनन्तवीर्य इन अनंत चतुष्टय समन्वित हैं वे अर्हंत प्रभु हमारे लिए उत्कृष्ट मङ्गल प्रदान करें ।।१।।

जेहिंझाणग्गिवाणेहिं अइदड्ढयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं।।२।।

अर्थ— जिनने ध्यानरूप अग्निवाण से अत्यंत दृढ़ जन्म, जरा और मरणरूप तीन नगर निर्दग्ध किये हैं तथा जिनने शाश्वत स्थान-मोक्ष प्राप्त किया है वे सिद्ध परमात्मा मुझे उत्कृष्ट ज्ञान देवें ।।२।।

पंचआचारपंचग्गिसंसाहया, बाइसंगाइ-सुअजलहिअवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महंते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खंगयासंगया।।३।।

अर्थ— जो पंचाचाररूप पंचाग्नि के साधक हैं, द्वादशांग श्रुतरूप समुद्र में अवगाहन करते हैं, मोक्ष के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों से सगंत-युक्त हैं वे आचार्य परमेष्ठी हमें उत्कृष्ट मोक्षलक्ष्मी देवें ।।३।।

घोरसंारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसिया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।४।।

अर्थ— तीक्ष्ण नखों वाले पापरूप विकराल सिंह जहां विचरण कर रहे हैं ऐसे घोर संसाररूप भयानक अटवियों में मार्ग भूले हुए जीवों को जो पथ प्रदर्शक हैं। उन

उपाध्यायों को हम सदा नमस्कार करते हैं ।।४।।

उग्गतवचरणकरणेहिं खीणंगया, धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणंगया।
णिब्भरं तवसिरियसमालिंगया, साहवो ते महामोक्खपथमग्गया।।५।।

अर्थ —जिनका उग्र तपश्चरण के करने से शरीर क्षीण हो गया है, जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान में तल्लीन रहते हैं तथा तपोलक्ष्मी से आलिंगित हैं वे साधु परमेष्ठी हमें मोक्ष का मार्ग दिखलाने में अग्रसर होवें ।।५।।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघनवल्ली सो छिंदए ।
लहइ सो सिद्धसोक्खाइं बहुमाणणं, कुणइ कम्मिधणं पुंजपज्जालणं ।।६।।

अर्थ—जो इस स्तोत्र द्वारा पंचमहागुरुओं की स्तुति करता है वह संसाररूप बड़ी भारी सघन बेल को छेद डालता है, मोक्ष सुख को आदर के साथ प्राप्त होता है तथा कर्मरूप ईधन के पुंज को जला देता है ।।६।।

अरुहा सिद्धाइरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
एदे पंचणमोयारा भवे भवे मम सुहं दिंतु।।७।।

अर्थ—अर्हंत, सिद्ध ,आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठीरूप पंचनमस्कार मुझे भव भव में सुख देवें ।।७।।

अनन्तर बैठ कर नीचे लिखा आलोचना-पाठ पढ़ें ।

आलोचना या अंचलिका

इच्छामि भंते ! पंचमहागुरुभक्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं । अट्ठमहा-पाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं-सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

अर्थ—हे भगवन्! पंचमहागुरुभक्ति और तत्संबन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अष्ट महाप्रातिहार्य संयुक्त अर्हंतों का, अष्ट गुणोंकर संपन्न ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित सिद्धों का, अष्ट प्रवचनमातृकाओं से संयुक्त आचार्यों का, आचारादि श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायों का और रत्नत्रय के पालन में रत सर्व साधुओं का सदा अर्चन करता हूं पूजन करता हूँ वंदना करता हूँ नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो , कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति

में गमन हो, जिनगुणसंपत्ति हो ।

पश्चात् पूर्वोक्त देववंदना के पाठ में न्यूनता हुई हो अथवा अधिकता हुई हो तो इसकी विशुद्धि के लिए समाधिभक्ति पढ़ने का आगम में नियम है। तद्यथा —

प्रथम बैठ कर क्रियाविज्ञापन करें।

अथ पौर्वाण्हिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं श्रीचैत्यपंचगुरुभक्ती विधाय तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

अथ पौर्वाह्निक देववंदना में पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिए भावपूजावंदनास्तव सहित श्रीचैत्यभक्ति और श्रीपंचगुरुभक्ति करके उनके हीनाधिकत्वादि दोषों की विशुद्धि के लिए आत्मा के पवित्र करने के लिए [१]समाधिभक्ति और तत्संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ ।

अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक "णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दंडक पढ़ें । दंडक के अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनति करके सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें । अनन्तर भूमिस्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक "थोस्सामि" इत्यादि दंडक पढ़ें । अन्त में पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति कर नीचे लिखी "समाधिभक्ति पढ़ें"। तद्यथा—

समाधि-भक्ति

अथेष्ट-प्रार्थना—प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गाः।।१।।

अर्थ—मेरे शास्त्रों का अभ्यास हो, जिनपति को नमस्कार हो, आर्य पुरुषों की सदा संगति हो, सदाचार परायण पुरुषों के गुणों के समूह की कथा हो, पराये दोषों के कहने में मौन हो, सब के प्रिय और हितरूप वचन हो, अपने आत्मस्वरूप में भावना हो, मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हों तब तक ये सब जन्म-जन्म में प्राप्त हों ।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः।।२।।

---

१. समाधिभक्त्यास्तमलः स्वस्य ध्यायेद्यथाबलम्।

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरण मेरे हृदय में रहें और मेरा हृदय आपके दोनों चरणों में लीन रहे ।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमहु णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु।।३।।

अर्थ— हे ज्ञानस्वरूप देव! अक्षर, पद और अर्थ से हीन तथा मात्रा से हीन जो मैंने कहा हो तो उसे आप क्षमा करें और मेरे दुःखों का क्षय हो ।।३।।

अनन्तर बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें ।

इच्छामि भंते ! समाधिभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। रयणत्तयसरूव-परमप्पज्झाणलक्खणसमाहिं सव्वकालं अंचेमि पुज्जेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

अर्थ—हे भगवन् ! समाधिभक्ति और तत्संबन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी मैं आलोचना करता हूँ, पूजन करता हूँ , रत्नत्रय स्वरूप परमात्म ध्यान लक्षण समाधि का सर्वकाल अर्चन करता हूँ, पूजन करता हूँ, वंदना करता हूँ नमस्कार करता हूँ । मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो, जिनगुण-संपत्ति हो ।

अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान करें ।

।।इति देववन्दनाविधिः समाप्तः।।

विक्रम शक भूपाल के '[१]अंक-[८]नाग-[९]निधि-[१]चंद'।
ज्येष्ठ शुकल पूनम तिथी पूर्ण हुई निरद्वंद।।१।।
यति-श्रावक, वंदन विधी, पूर्व शास्त्र अनुसार ।
सोनी पन्नालाल ने, की संग्रह सुविचार।।२।।

अथ देववंदना विधि

(सामायिकभाष्य ग्रन्थ से)[१]

ईर्यापथशुद्धि

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडिय पइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं, तस्स विसोहिकरणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं पज्जुवासं करेमि, तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

ॐ णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

(९ जाप्य, २७ उच्छ्वास में)

(अनंतर बैठकर आलोचना आदि पाठ पढ़ें व कृत्य विज्ञापन करें)

ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादादेकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा। निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा। मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरु भक्तितो।।१।।

इच्छामि भन्ते! आलोचेउं इरिया-वहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिम-चउदिस-विदिसासु विहरमाणेणजुगंत्तरदिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा। पमाददोसेण डबडबचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पादद्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः, संसारघोरार्णवः।।

१. सामायिक भाष्य-पृ. ८ से २७ तक।

अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकर-व्याकीर्णभूमण्डलो।
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिल-च्छायानुरागं रविः।।१।।

क्रुद्धाशीर्विषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमन्त्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुग-स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्।
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा, शाम्यन्त्यहो! विस्मयः।।२।।

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते ।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्, पीडाः प्रयान्ति क्षयं।।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता।
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी।।३।।

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान् ।
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्रदावानला-
न्नस्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम्।।४।।

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते! विभो!।
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय! ।।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः।
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः।।५।।

दिव्यस्त्रीनयनाभिराम! विपुलश्रीमेरुचूडामणे!
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामंडल! ।।
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते।।६।।
यावन्नोदयते प्रभापरिकरः, श्रीभास्करो भासयं-
स्तावद्-धारयतीह पंकजवनं, निद्रातिभारश्रमम् ।।

यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।।७।।

शांतिं शान्तिजिनेन्द्र! शांतमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शांत्यर्थिनः प्राणिनः।।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः।।८।।

नमः श्रीवर्द्धमानाय, निर्धूत कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते।।१।।
जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं, प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम्।
अनन्तबोधादिभवं गुणौघं, क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये।।२।।
खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि।।३।।
रागबंधपदोसं च, हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदिमरदिं च वोस्सरे।।४।।
हा! दुट्ठकयं हा! दुट्ठचिंत्तियं भासियं च हा! दुट्ठं।
अन्तो अन्तो डज्झम्मि, पच्छुत्तावेण वेदंतो।।५।।
दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचिकाएण पडिकमणं।।६।।

कृत्यप्रतिज्ञा

भगवन्नमोऽस्तु ते, एषोऽहं देववन्दनां कुर्याम्।

(इति सामायिक स्वीकारः)

समता सर्वभूतेषु, संयमे शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं।।१।।

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं, सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ।।२।।

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्ट-पादपद्मांशुकेसरम्।
प्रणमामि महावीरं, लोकत्रितयमंगलम्।।३।।

आदौ मध्येऽवसाने च, मङ्गलं भाषितं बुधैः।
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं, तदविघ्नप्रसिद्धये।।४।।

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु, न क्षुद्रदेवा परिलंघयन्ति।
अर्थान्यथेष्टांश्च सदालभन्ते, जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन।।५।।

सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थभ्यो वरिष्ठेभ्यः कृतादरः।
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं नमस्कुर्वे पुनः पुनः।।६।।

आई मंगलकरणे सिस्सा लहु पारया हवंति त्ति।
मज्झे अव्वोच्छित्ती, विज्जा विज्जाफलं चरिमे।।७।।

दुऊणदं जहाजादं, वारसावत्तमेव च।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किरियम्मं पउंजदे।।८।।

किरियम्मंपि करंतो ण होदि किरियम्मनिज्जराभागी।
बत्तीसाणण्णदरं, साहुट्ठाणं विराहिंतो।।९।।

तिविहं तियरणसुद्धं, मयरहियं दुविहठाणपुणरुत्तं।
विणयेण कम्मविसुद्धं, किरियम्मं होदि कादव्वं।।१०।।

योग्यकालासनस्थान-मुद्रावर्त-शिरोनतिः।
विनयेन यथाजातः, कृतिकर्मामलं भजेत्।।११।।

स्नपनार्चास्तुतिजपान्, साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युज्यां यथाम्नायमाद्यादृते संकल्पितेऽर्हति।।१२।।

एकत्वेन चरन्निजात्मनि मनोवाक्कायकर्मच्युते।
कैश्चिद्विक्रियते न जातु, यतिवद्यद्भागपि श्रावकः।।१३।।

येनार्हच्छ्रुतलिङ्गवानुपरिमग्रैवेयकं नीयते।
भव्योऽप्यद्भुतवैभवेऽत्र न सजेत्सामायिके कः सुधीः।।१४।।

अथ कृत्यविज्ञापना

भगवन्नमोस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादाः वंदिष्येऽहं। एषोऽहं सर्वसावद्य-योगाद्विरतोऽस्मि।

अथ पौर्वाण्हिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(अनंतर प्रमाणकर ३ आवर्त एक शिरोनति कर मुक्ताशुक्ति मुद्रा करके यह दण्डक पढ़ें।)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण

समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(इस प्रकार सामायिक दण्डक पढ़कर पुनः तीन आवर्त व एक शिरोनति करे। पश्चात् जिनमुद्रा से कायोत्सर्ग करें। सत्ताईस उच्छ्वास में ९ जाप्य, अनन्तर प्रणाम करके पुनः तीन आवर्त व एक शिरोनति करे और मुक्ताशुक्ति मुद्रा के द्वारा चतुर्विंशति स्तवन पढ़ें।)

थोस्सामिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।
उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।
एवं मए अभित्थुया, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पहासत्ता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

(अनन्तर तीन आवर्त व एक शिरोनति करें। इस तरह एक कायोत्सर्ग में दो प्रणाम, बारह आवर्त, चार शिरोनमन होते हैं।)

चैत्यभक्ति

श्रीगौतमादिपदमद्भुतपुण्यबन्ध-मुद्योतिताखिलममोघमघप्रणाशम्।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं, निर्वाणकारणमशेषजगद्धितार्थम्।।

हरिणीछंद —

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।
तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ।।२।।
तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ।।३।।
अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।
मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्य।।५।।
क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।
भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।
भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।
इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।
अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ।।११।।
द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।
विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।
कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ।।१४।।
यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।
अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।
श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।
ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान् ।।२०।।
वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।
इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।
अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ।।२३।।
लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्।।२४।।
शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम् ।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य - द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ।।२७।।
ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रोद्रेकितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्त्रवसंवरनिर्जरानिःस्त्रवणं।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ।।२९।।
अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

पृथ्वी छंद —

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ।।३२।।

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महता-मृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त-कषायबन्धम्।।
यस्यांग-लक्ष्मी-परिवेश-भिन्नं, तमस्तमोरे-रिव रश्मि-भिन्नम् ।

ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।।१।।
स्वपक्षसौस्थित्य-मदावलिप्ता, वाक्सिंहनादै-र्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्र-गण्डा, गजा यथा केशरिणो निनादैः।।
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं वभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्त-धामाक्षर-विश्वचक्षुः, समंत-दुःखक्षय-शासनश्च।।२।।
स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलंकलेपः।
व्याकोश-वाङ्न्याय-मयूख-मालः, पूयात् पवित्रो भगवान्मनो मे।।
वत्ताणुट्ठाणे, जणधणुदाणे, पइपोसिउ तुहु खत्तधरु।
तुह चरणविहाणे केवलणाणे, तुहु परमप्पउ परमपरु।।१।।
जय रिसह रिसीसरणमियपाय, जय अजियजियंगमरोसराय।
जय संभवसंभवकयविओय, जय अहिणंदण णंदियपओय।।
जय सुमइ सुमइसम्मयपयास, जय पउमप्पह पउमाणिवास।
जय जयहि सुपाससुपासगत्त, जय चन्दप्पह चन्दाहवत्त।।
जय पुप्फयन्त दंतन्तरंग, जय सीयल सीयलवयणभंग।
जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज, जय वासुपूज्य पुज्जाणुज्ज।।
जय विमल विमलगुणसेढिठाण, जय जयहि अणंताणंतणाण।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत, जय सांति सांति विहियावयत्त।।
जय कुंथुकुंथपुहुअंगिसदय, जय अर अर माहर विहियसमय।
जय मल्लि मल्लि आदामगधं, जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध।
जय णमि णमियामरणियरसामि, जयणेमि धम्मरह चक्कणेमि।
जय पास पासछिंदणकिवाण, जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण।।
इह जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं, परहिंबि णमिय सुरावलिहिं।
अणहणहिं अणाइहिं समियकुवाइहिं, पणविधि अरहंतावलिहिं।।

मानस्तंभाः सरांसि, प्रविमल-जल-सत्खातिका-पुष्पवाटी।
प्रकारो नाट्यशालाद्वितयमुपवनं वेदिकांतर्ध्वजाद्याः।।
शालः कल्पद्रुमाणां, सुपरिवृत्त-वनं स्तूप-हर्म्यावली च।
प्राकारः स्फाटिकोन्त-र्नृसुर-मुनिसभा पीठिकाग्रेस्वयंभूः।।१।।

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके, सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानां।।
अवनितलगतानां, कृत्रिमाकृत्रिमाणां।
वनभवनगतानां, दिव्यवैमानिकानां।।
इह मनुजकृतानां, देवराजार्चितानां।
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि।।२।।

जम्बूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा-
श्चंद्राम्भोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभाजिनाः।
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना,
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।३।।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके।
इष्वाकारेऽजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि।।४।

द्वौ कुन्देन्दुतुषार-हारधवलौ, द्वाविन्द्रनीलप्रभौ,
द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ, द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्मृत्युरहिताः, संतप्तहेमप्रभा-
स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।।५।।

आलोचना या अंचलिका

इच्छामि भन्ते! चेइयभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचे-इयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइ-सियकप्पवासियत्तिचउविहा देवा सपरिवार दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं, अंचंति, पुज्जंति वन्दंति, णमंसंति अहमवि इह संतो, तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(अनन्तर पंचांग नमस्कार करे व नीचे लिखी कृत्यविज्ञापना करे)

अथ पौर्वाण्हिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग प्रणाम करें, अनंतर ३ आवर्त एक शिरोनति कर पूर्वोक्त सामायिक दंडक पढ़े। पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास-प्रमाण कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनति करे। अनन्तर नीचे लिखी पंचमहागुरुभक्ति पढ़े।

पंचमहागुरुभक्ति

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।।१।।

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्दयं[१] जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं।।२।।

पंचआचारपंचग्गिसंसाहया, बारसंगाइं सुअजलहि-अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खंगयासंगया।।३।।

१. अइदड्ढयं

घोरसंसार-भीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।४।।

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणंगया[1], धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणंगया।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया।।५।।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए
लहइ सो सिद्धसोक्खाइंबहुमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं।।६।।

अरुहा सिद्धाइरिया,उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण णमुक्कारा, भवे भवे मम सुहं दिंतु।।७।।

अंचलिका

इच्छामि भन्ते! पंचगुरुभक्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपाल-णरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(अनंतर नमस्कार करके कृत्य विज्ञापना करें।)

अथ पौर्वाण्हिक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीशांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(प्रणाम करके ३ आवर्त, १ शिरोनति कर 'णमो अरहंताणं' इत्यादि दंडक पढ़कर ३ आवर्त, १ शिरोनति करे। जाप्य से कायोत्सर्ग करे, पुनः प्रणाम कर ३ आवर्त, १ शिरोनति करके "थोस्सामि" इत्यादि पढ़कर ३ आवर्त, १ शिरोनति करके "शांतिभक्ति पढ़े।")

१. महा

शांतिभक्ति

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्।।१।।

पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि।।२।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मंडलतेजः।।३।।

तं जगदर्चितशांतिजिनेन्द्रं, शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च।।४।।

येभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः।
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु।।५।।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।६।।

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि-र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामंडलं दुंदुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणां।।७।।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्, धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा, व्याधयो यांतु नाशं।।
दुर्भिक्षं चोरिमारी क्षणमपि जगतां, मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि।।८।।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शांतिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।९।।

—अंचलिका—

इच्छामि भंते! संतिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेर-सहियाणं, चउती-सातिसयविशेषसंजुत्ताणं, बत्तीसदेवेंदमणिमय-मउडमत्थय-महियाणं, बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइ-अणगारोवगूढाणं, थुइसय-सहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिम-मंगलमहापुरिसाणं, णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(पुनः नमस्कार कर विज्ञापना करे।)

अथ पौर्वाण्हिकदेववंदनायां चैत्य-पंचगुरुशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादि दोषविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पुनः नमस्कार कर ३ आवर्त, १ शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़कर ३ आवर्त, १ शिरोनति करे। पुनः कायोत्सर्ग कर नमस्कार करे व ३ आवर्त १, शिरोनति कर थोस्सामि स्तव पढ़कर ३ आवर्त, १ शिरोनति कर समाधिभक्ति पढ़े।)

समाधि भक्तिः

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यंतां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः।।१।।
जैनमार्गरुचिरन्यमार्गनिर्वेगता जिनगुणस्तुतौ मतिः।
निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः, सम्भवन्तु मम जन्मजन्मनि।२।।
तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।३।।

अक्खर-पयत्थहीणं, मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाण देवय! देउ समाहिं च मे बोहिं।।४।।
जं सक्कइ तं कीरइ सेसस्स सया करेइ सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं।।५।।
तवयरणं वयधरणं संजमसरणं च जीवदयाकरणं।
अंते समाहिमरणं चउगइदुक्खं णिवाणेइ।।६।।

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(अनंतर यथावकाश आत्मध्यान करें।)

प्रशस्तिः

श्रीवर्धमानमानम्य, शासनं यस्य वर्तते।
शारदां गौतमादींश्च, सर्वसाधून् नमाम्यहम्।।१।।

जंबूद्वीपेऽत्र क्षेत्रे प्राग्-भरतेऽप्यार्यखंडके।
श्रीवीरशासने सूरिः, कुंदकुंदगुरुर्महान्।।२।।

मूलसंघे च तन्नाम्ना, कुंदकुंदान्वयोऽभवत्।
गच्छे सरस्वतीनाम्नि, बलात्कारगणे शुभे।।३।।

चारित्रचक्रभृत्सूरिः प्रथमः शांतिसागरः।
श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य पट्टाधिपोऽभवत्।।४।।

महाव्रतप्रदातारं, गुरुं गुरोर्गुरुं नुवे।
गुरुभक्त्या तरिष्यामि, भववार्धिमपि त्वरम्।।५।।

नवत्रिपंचद्वयंकेऽस्मिन्, वीराब्दे पौषकृष्णके।
एकादश्यामयं ग्रन्थो, जिनभक्त्या प्रपूर्यते।।६।।

या देववन्दना सैव, सामायिकविधिर्मता।
पूर्वाचार्यप्रमाणत्वात्, सर्वमान्य भवेदिह।।७।।

गणिनीज्ञानमत्यासौ, ग्रन्थः संकलितो मया।
जिनभक्तिप्रसादेन, स्थेयान्नंद्यादयं चिरम्।।८।।

कृताकृतसुमेर्वाद्याः, यावत्तावदियं विधिः।
मुमुक्षूणां हृदि स्थेयात्, दद्याच्च स्वात्मसंपदम्।।९।।

अर्थ—जिनका शासन आज यहाँ चल रहा है उन श्री वर्धमान भगवान को नमस्कार करके सरस्वती माता को एवं श्री गौतमस्वामी से लेकर सर्व साधुओं को मैं नमस्कार करती हूँ। इस प्रथम जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में श्रीवीरप्रभु के शासन में श्री कुंदकुंदाचार्य महान हुए हैं। इस मूलसंघ में उन्हीं के नाम से कुंदकुंदाम्नाय प्रसिद्ध है। इसी आम्नाय में सरस्वतीगच्छ और बलात्कारनाम से प्रसिद्ध शुभगण में बीसवीं सदी में चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी प्रथमाचार्य हुए हैं, उनके पट्टाचार्य श्री वीरसागर आचार्य हुए हैं। इनसे मैंने आर्यिका दीक्षा ली है अतः इन महाव्रतप्रदायकगुरु को व गुरु के गुरु श्री शांतिसागराचार्यवर्य को नमस्कार करती हूँ क्योंकि गुरुभक्ति से ही मैं शीघ्र भवसमुद्र से पार होऊँगी।।१ से ५।।

वीर नि. संवत् २५३९ पौष कृष्णा एकादशी की शुभ तिथि में मेरे द्वारा जिनेन्द्रदेव की भक्तिपूर्वक यह ग्रंथ पूर्ण किया गया है। जो 'देववंदना' क्रिया है वही 'सामायिक विधि' मानी गई है। यह पूर्वाचार्यों के वचनों से प्रमाणीक है। अतः लोक में यह सभी को मान्य होवेगी। मुझ गणिनी ज्ञानमती के द्वारा यह ग्रंथ अनेक षट्खण्डागम आदि ग्रंथों से संकलित किया गया है। यह ग्रंथ जिनेन्द्रदेव की भक्ति के प्रसाद से चिरकाल तक इस पृथ्वी पर स्थित रहे और आनंद को प्रदान करता रहे। जब तक कृत्रिम (हस्तिनापुर में निर्मित सुमेरुपर्वत, जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक, कमलमंदिर (आदि) और अकृत्रिम भी सुमेरुपर्वत आदि रहेंगे, तब तक यह सामायिक विधि मुमुक्ष—साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं के हृदय में स्थित रहे एवं स्वात्मा की संपत्ति—मोक्षसुख को प्रदान करे।।६ से ८।।